ओम्

प्रवचनमाला

आचार्य ज्ञानेश्वरार्य जी द्वारा वर्ष 2004 में दिए गये उपदेशों का संग्रह
(प्रथम भाग)

संग्रहकर्ता,भूमिका लेखक एवं संपादक
डॉ. राधावल्लभ चौधरी (एम.बी.बी.एस)

प्रकाशक

वानप्रस्थ साधक आश्रम

आर्यवन, रोजड़, पत्रा. सागपुर, जि. साबरकांठा
(गुजरात) 383307
दूरभाष: (02774) 277217, (02770) 257224, 287417
वानप्रस्थ साधक आश्रम : (02770) 291555
E-mail: darshanyog@ gmail.com
Website:www.darshanyog.org

१६१२२१

पुस्तक : आचार्य ज्ञानेश्वरार्य प्रवचनमाला
उपदेशक : ज्ञानेश्वरार्य (दर्शनाचार्य, एम.काम.)
संपादक : डॉ. राधावल्लभ चौधरी (एम.बी.बी.एस)
प्रकाशन तिथि : जुलाई 2009
संस्करण : प्रथम
लागत मूल्य : 20/–
मुख्य वितरक : आर्य रणसिंह यादव
द्वारा डा. सद्गुणा आर्या
'सम्यक्' गांधीग्राम , जूनागढ, (गुजरात)

प्राप्तिस्थान

1. **आर्यसमाज मंदिर,** महर्षि दयानन्द मार्ग, रायपुर दरवाजा बाहर, कांकरिया, अहमदाबाद
2. **विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द** 4408,नई सड़क, दिल्ली–6
3. **आर्ष गुरूकुल महाविद्यालय,** खर्राघाट, नर्मदापुरम् होशंगाबाद (म.प्र.)
4. **ऋषि उद्यान,** आना सागर, पुष्कर रोड, अजमेर (राजस्थान) पिन 305001
5. **गुरूकुल आश्रम,** आमसेना, खरियार रोड,जिला नवापारा, (उड़ीसा)
6. **श्री चंद्रेश आर्य,** 310–बी, साधु वासवाणी सोसा. गोपालपुरी, गांधीधाम (गुज.)
7. **आर्य समाज मंदिर**, पोरबंदर, राजकोट भरूच, मोरबी, टंकारा, जूनागढ़, गांधीनगर, आणंद, जामनगर आदि ।

विषय सूची

विषय **पृष्ठ संख्या**

आशीर्वचन .....

मेरे अपने भाव (भूमिका) .....

1. सफल कौन है .....

2. सफलता के पीछे ज्ञान है .....

3. ईश्वर, जीव प्रकृति को नही जानने वाला भूल करता है ....

4. ईश्वर, जीव और प्रकृति को जानें.....

5. नित्य और अनित्य का विवेक प्राप्त करो.....

6.शरीर जब तक ,दु:ख तब तक ....

7..सबको सब दिन प्रतिकूलतायें झेलनी पड़ेंगी .....

8. प्रतिकूलता को ज्ञान से निपटें.....

9.विवेक से वैराग्य पैदा होता है.....

10. व्यक्ति की परीक्षा संकट में होती है.....

11. शरीर के बंधन से छूट मोक्ष प्राप्ति के लिए जन्म मिला है...

12. हमारे पास बहुत ज्ञान विज्ञान है .....

13. संस्कार जगायें, सामर्थ्य बढ़ाये.....

14. क्या करे, क्या न करे,यह पता होना चाहिए .....

15. जिसमें रूचि, उसमें प्रवृत्ति.....

16. रुचि का अतिरेक दिनचर्या को असंतुलित करता है.....

17. ईश्वर,जीव और प्रकृति के विषय में रुचि पैदा करें.....

18 सफलता के लिए प्रयास जरूरी है.....

19. अपने कर्त्तव्यों को जानों .....

20. व्यक्तिगत कर्त्तव्य का पालन सबसे पहले करें.....

21. सर्वप्रथम व्यक्तिगत जीवन का निर्माण करें.....

22. अपनी नींव मजबूत करें .....

23. सामर्थ्य बढ़ाये .....

24 शरीर को समर्थ बनायें .....

25. योगाभ्यास क्या है?.....

26. काम में लम्बा समय लगायें .....

27 मोक्ष प्राप्ति के लक्ष्य को दृढ़ बनाओ.....

28. सिद्धांतों को कभी न छोड़े.....

29. दृढ़ संकल्प बाधा हटायें, प्रगति कराये.....

30. विद्या, बुद्धि और स्मृति रहित अभ्यास मूढ़ता उत्पन्न करता है.

31. आत्म निरीक्षण करें .....

32. मैं ही अपना गुरू हूं .....

33. खुद से प्रश्न करो.....

34. अपने व्यवहार के विषय में प्रश्न उपस्थित करें.....

35. अपने स्तर का परीक्षण करें .....

36. हमारा स्तर साँप–सीढ़ी के खेल की तरह बदलता है.....

37. अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए व्यक्ति स्वयं जिम्मेदार है

38. एक ही विषय में परस्पर विरुद्ध विचार प्रगति अवरुद्ध करते हैं

39. विद्वानों की कीमत होती है.....

40. स्वयं अनुशासित ही दूसरों को अनुशासन में रख सकता है

41. आस्तिक बहुत कुछ कर सकता है.....

42. बात के तात्पर्य को समझें.....

43. श्रमदान करें..... .....

44. मिलके काम करें.....
45. गुरु का परीक्षण करो.....
46 गुरु में अपने प्रति विश्वास जागृत करो.....
47. संतान को विद्या और समाज को सम्पत्ति दो .....
48. वैश्य को धन कमाना चाहिए.....
49. दो प्रकार के धन है.....
50. सामाजिक–राष्ट्रीय दायित्वों का निर्वहन करें.....
51. सांस्कृतिक रूप से कंगाल हो गये हैं हम.....
52. आज सबकुछ उल्टा–पुल्टा है.....
53. हमारा सबकुछ श्रेष्ठ है .....
54. सब श्रेष्ठ बने.....
55. अंग्रेजी भाषा की गुलामी छोड़ो.....
56. हिन्दी अपनायें.....
57. युद्ध विनाशक है .....
58. इतिहास से सबक सीखो .....
59. गोधन बढ़ायें.....
60. ईश्वर हमें प्रेरणा देता है.....
61. ईश्वर से विशेष गुण मिलते हैं.....
63. ईश्वरीय न्याय व्यवस्था को स्वीकारो.....

.....

मेरी अपनी बात

करीब पन्द्रह वर्ष पूर्व जब मैं अपने कहे जाने वाले लोगों की उपेक्षा,तिरस्कार,परिचितों के विश्वासघात और अपनी अज्ञानता, अयोग्यता, विपन्नता और रोगों से पीड़ित होकर दु:ख और निराशा के गहरे समुन्दर में गोते लगाता हुआ इनसे पीछा छुड़ाने का असफल प्रयत्न कर रहा था कि प्रभु कृपा से परम कारूणिक आचार्य ज्ञानेश्वरार्य जी का मुझे सहारा मिला। उन्होंने मुझे दर्शन योग महाविद्यालय में ड़ेढ़ माह अपने सानिध्य में रहने की अनुमति दी। इस दौरान मैं जैसे–जैसे विद्यालय के नियमानुसार सुबह चार बजे जागरण,स्नान,व्यायाम, ध्यान,यज्ञ,स्वाध्याय,सत्संग आदि नियमित दिनचर्या के अंगो का पालन करता चला गया, दु:खद स्मृति, चिंता, अज्ञानता, अयोग्यता और रोग घटते चले गये तथा सहनशीलता, सुख, शांति, एकाग्रता, बुद्धि, स्मृति, ज्ञान और वैराग्य बढ़ते चले गये, शारीरिक उन्नति भी होती चली गई। इसके बाद तो साल में एक बार एक–दो माह विद्यालय में ही रहने का नियम बना लिया। मैं सोचता था कि कितना अच्छा होता कि जो लोग यहाँ नहीं आ पाते हैं,उन्हे भी यह लाभ मिले। उन्हे भी संसार की वास्तविकता का ज्ञान मिल सके ताकि वे भी अपने को दु:खी होने से बचा सकें और मस्ती से जिन्दगी को जी सकें। ईश्वर कृपा से मेरी यह इच्छा तब पूरी हो गई,जब मैनें आचार्य जी से प्रार्थना की, कि वर्ष 2004 में आपके द्वारा दिये गये प्रवचनों को मैंने लिपिबद्ध कर संपादित किया है और मेरी बड़ी इच्छा है कि दूसरों को भी इन प्रवचनों का लाभ मिले। यह सुनकर आचार्यजी ने पुस्तक प्रकाशन की सहर्ष अनुमति दे दी। इसके लिए मैं उनका *हृदय* से आभारी हूँ। पुस्तक प्रकाशन में किसी प्रकार की त्रुटि हो गई हो तो पाठकगण कृपया अवगत कराने की कृपा करें ताकि अगले संस्करण में संशोधन किया जा सके। दि.26–06–2009

विनयवत

डॉ राधावल्लभ चौधरी

14, सरगम अपार्टमेन्ट, राईट टाउन,जबलपुर (म.प्र.)

मो. 09424306170

भूमिका– आध्यात्मिक सफलता यानी मोक्ष प्राप्ति के मार्ग पर चल रहे व्यक्तियों में क्या विशेषता होती है, आचार्यवर यह बताते हैं:–

(1) कौन सफल है ?

व्यक्ति को प्रायः यह अनुभव होता है कि मैं उन्नति कर रहा हूँ, प्रगति कर रहा हूँ, पवित्र होता जा रहा हूँ। अतः वास्तविक उन्नति और विकास क्या है, इसका लक्षण क्या है, यह भी हमें समझना चाहिये।

जो व्यक्ति अधिकतम प्रसन्न रहता है, संतुष्ट रहता है, गंभीर रहता है, स्वतन्त्र रहता है, किसी भी प्रकार का भय, चिंता या आशंका उसको नहीं रहती है, उसके मन में द्वेष, वितर्क, संशय उत्पन्न नहीं होते हैं, रजोगुण, तमोगुण की प्रवृत्ति मन में उत्पन्न नहीं होती है, सहनशक्ति, धैर्य, सरलता, विनम्रता और सेवाभाव उसके मन में बना रहता है, सत्य को, धर्म को, आदर्श को,न्याय को व्यक्ति शिरोधार्य करके चलता रहता है, मन में ईश्वर के प्रति प्रेम बना रहता है, कठिनाईयाँ, बाधायें उपस्थित होने पर भी वह उन आदर्शो और धार्मिक कार्यो को छोड़ता नहीं है, ऐसा व्यक्ति ही उन्नति करता है और वही सफल कहलाता है।

लक्ष्य के प्रति अग्रसर होना, आगे बढ़ते रहना, लक्ष्य प्राप्ति की गति तीव्र करना, बाधाओं से बचना, और समस्याओं का समाधान करना, एक सीमा तक व्यक्ति के अपने हाथ में है।

पहले व्यक्ति के जीवन के लक्ष्य का निर्धारण हो जाता है कि – ये मेरा लक्ष्य है। वह उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सर्वात्मना समर्पित होकर के चलता है तो सांसारिक प्रतिकूलतायें, सांसारिक बाधायें, सांसारिक विरोधा, सांसारिक कठिनाइयाँ उसके सामने कुछ भी नहीं होती हैं। वह पूर्ण आत्मविश्वास के साथ ईश्वर से शक्ति, ज्ञान, बल और आनंद को प्राप्त करते हुए आगे बढ़ता रहता है। वह भी बिना भय, संशय, शंका, उत्पन्न किये हुये ।

अनेक बार देखने में आता है कि व्यक्ति दिन में इतना असावधान होता है, इतना तमोगुण, रजोगुण से युक्त रहता है, उसमें इतनी अधिक

सकामता और स्वार्थ की वृत्ति रहती है, इतनी इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति होती है, उसके व्यवहारों में, विचारों में इतनी जड़ता रहती है कि ऐसे व्यक्ति को धार्मिक, परोपकारी, ईश्वरभक्त, आध्यात्मिक और योग मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति नहीं मान सकते।

आध्यात्मिक मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति लौकिक वृत्तियों (व्यवहारों) से अत्यंत विलक्षण (अलग तरह का) होता है। लौकिक व्यक्ति वाह्य चिन्हों के माध्यम से, वाह्य लक्षणों से, वाह्य क्रियाकलापों से कितना ही अपने आप को धार्मिक,आध्यात्मिक प्रकट करने का प्रयास करे,अन्दर से तो वो होता लौकिक ही है। सामान्य रूप से व्यक्ति के व्यक्तित्व का, उसमें मौजूद आध्यात्मिकता का पता नहीं चलता है। हां, मगर जो व्यक्ति उसके निकट में रह रहा है, वह उसके हाव–भाव को, उसके विचारों को और क्रियाओं को ठीक प्रकार से सुनकर के, समझकर के, जानकर के कुछ थोड़ा पता लगा सकता है। अन्यथा व्यक्ति की आध्यात्मिकता का, निष्कामता का, ऐषणारहित मनोस्थिति का,उसकी विवेकयुक्त स्थिति का या लौकिक प्रयोजन से रहित मनःस्थिति का सामान्य व्यक्ति को ज्ञान नहीं हो सकता। वह इसका पता लगा ही नहीं सकता। इतना होने पर भी यह निश्चित है कि दूसरे व्यक्ति हमारा निर्धारण करे या नहीं करे,मगर हम अपना निर्धारण जरूर कर सकते हैं कि हमारी क्या स्थिति है, हम किस दिशा में बढ़ रहे हैं।

भूमिका–किसी ध्येय में सफलता पाने के लिए उस विषय का ज्ञाता होना जरूरी है। जो जितना अधिक जानकार है, वह उसमें उतना अधिक सफल है। आचार्यवर सफलता का एक रहस्य ये बता रहे हैं कि –

(2) सफलता के पीछे ज्ञान है।

ये सारी स्थितियाँ मानसिक हैं, और ये आध्यात्मिक मानसिक स्थितियाँ, हमारे ज्ञान विज्ञान का परिणाम हैं। ज्ञान–विज्ञान को प्राप्त करके व्यक्ति उसके अनुरूप सतत चलता रहे तो यह मानसिक स्थिति बनी रहती है।

भूमिका– अपनी भूल, अपने ही हाथों सुधर जाये,यह अच्छा है, लेकिन

इसके पहले भूल का कारण जानना जरूरी होता है,और वह है:–

(3) ईश्वर, जीव, प्रकृति को ना जानने वाला भूलें करता है।

अपनी दिनचर्या में,अपने जीवन में अनेकों प्रकार की त्रुटियाँ, भूलें, दोष दिन में हो जाते हैं। न केवल स्थूल (शारीरिक) रूप से, न केवल वाचनिक रूप से बल्कि विचार के माध्यम से भी हमसे त्रुटियाँ होती हैं। जो व्यक्ति सतर्क–सावधान नहीं है,वह रोजाना सैकड़ों प्रकार की भूलें कर लेता है। वह कभी मन में द्वेष उत्पन्न करता है तो कभी राग उत्पन्न करता है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से राग, द्वेष और मोह उत्पन्न करना त्रुटि है, भूल है, दोष है। सतर्क और सावधान न होना, आलसी, प्रमादी, (लापरवाह) होकर के अपने कर्त्तव्यों को, दायित्वों को भूल जाना, अपने आत्मा को भूल जाना, ईश्वर के सत्य को भूल जाना, संसार के जड़त्व (निर्जीवता–अनात्मा स्वरूप) को भूल जाना, ये त्रुटि है। जो व्यक्ति ईश्वर, जीव और प्रकृति (सत्त्व, रज व तम और इनसे बने संसार) नामक तीन पदार्थो का ज्ञान सतत नहीं रखता है, वह हर समय त्रुटि करता है।

हमें हर समय यह पता होना चाहिए कि–" मैं आत्मा हूँ, शरीर और संसार के पदार्थ जड़ हैं और ईश्वर इनको बनाने वाला है और सर्वव्यापक है।" जो इन तीनों वस्तुओं का ज्ञान हर समय अपने मन, मस्तिष्क में नहीं रखता है, वह त्रुटि कर रहा है, हर पल कर रहा है। ऐसी त्रुटि केवल उससे होती है जो त्रेतवाद (ईश्वर, जीव, प्रकृति) को ठीक प्रकार से नहीं समझ रहा है। पता होना चाहिए कि– ये मेरा शरीर जड़ है और मैं इसका संचालक आत्मा हूँ। मैं मन–इन्द्रियों का प्रयोग करने वाला चालक हूँ। इस शरीर को बनाने वाला, इसका संचालन करने वाला और मेरे कर्मो का फल देने वाला, मुझे जीवन देने वाला और इस शरीर का पालन करने वाला परमपिता परमात्मा है। वह मेरा ईश्वर, मेरे हृदय में बैठा हुआ मुझको अच्छे बुरे का ज्ञान कराता है।

इन तीनों तत्त्वों का ज्ञान जब व्यक्ति को सतत् बने रहता है,तब वह ज्ञानी और दोषरहित होता है। जब तीन प्रकार का ज्ञान उसको नहीं रहेगा तो सतत् दिन भर, अठारह घंटे, हर सेकेंड वह त्रुटि करेगा, भूल करेगा, दोष करेगा। इन तीन तत्त्वों के ज्ञान को जो व्यक्ति प्राप्त कर लेता है, वह व्यक्ति निरंतर उन्नति करता रहता है। इसमें कोई संशय नहीं है। ***भूमिका– अपने अविद्या आदि दोषों को दूर करने हेतु विद्या की प्राप्ति करना जरूरी होता है, तब ही लौकिक और आध्यात्मिक सफलता मिलती है । अतः आचार्यवर कहते हैं–***

(4) ईश्वर, जीव और प्रकृति को जानें।

मनुष्य जीवन का उद्देश्य है– बंधन से छूट कर के स्वतंत्रता को प्राप्त करना। इसका उपाय है– ईश्वर को जानना, अपने आप को जानना और प्रकृति को जानना। पहले प्रकृति को जानें अर्थात् इस संसार को जानें । फिर अपने स्वयं के स्वरूप को जानें कि मैं कौन हूँ, मेरा सामर्थ्य क्या है,मेरी योग्यता क्या है। इसके बाद ईश्वर क्या है, उसकी सामर्थ्य क्या है, इसके विषय में जानें। इन तीन चीजों का अच्छी प्रकार से ज्ञान प्राप्त कर लेने पर व्यक्ति प्रकृति के बंधन से छूट सकता है और कोई उपाय नहीं है।

ईश्वर को जानने के लिए व्यक्ति को शास्त्र पढ़ने पड़ते हैं। वेद,दर्शन,उपनिषद आदि–आदि शास्त्र हैं। उनको पढ़कर के अपने जीवन को पवित्र बनाना पड़ता है। अपने जीवन को उन आदर्शो के आधार पर चलाना पड़ता है। जो आदर्श, जो मर्यादायें, जो सिद्धांत, जो विधि–विधान ऋषियों ने वेदों के आधार पर हमारे लिए निर्धारित किये हैं, उनके अनुरूप आचरण करना पड़ता है। इनसे विपरीत चलकर के कोई भी व्यक्ति इस बंधन से छूट नहीं सकता, दुःखों से छूट नहीं सकता।

भूमिका–मोक्ष की प्राप्ति और व्यवहार की श्रेष्ठता के लिए विवेक जरूरी है। सबसे पहला है–नित्य–अनित्य का विवेक। आचार्यवर कहते हैं:–

(5) नित्य–अनित्य का विवेक प्राप्त करो।

क्या मेरा शरीर अनित्य है? क्या मैं मरूंगा? यह प्रश्न ऐसा है कि यद्यपि स्थूल रूप से किसी व्यक्ति से पूछा जाये तो वह उत्तर देगा– इसमें क्या नयी बात है। मरना तो है। जो उत्पन्न हुआ है, वो तो मरेगा ही। सभी मरते हैं, मैं भी मरूंगा। यहां पर यह उस व्यक्ति का शाब्दिक ज्ञान है, आनुमानिक ज्ञान भी है। इसके अलावा एक प्रात्यक्षिक ज्ञान भी होता है, जो व्यक्ति में विवेक उत्पन्न करने के लिये बाध्य कर देता है। वह विवेक ज्ञान जब उत्पन्न होता है तो व्यक्ति में वैराग्य उत्पन्न होता है। शाब्दिक ज्ञान का उतना प्रभाव नहीं होता है, आनुमानिक प्रमाण से उत्पन्न ज्ञान का उतना प्रभाव नहीं होता है, जितना कि प्रात्यक्षिक ज्ञान का प्रभाव पड़ता है। जब मन के अंदर इस प्रकार की बात उठाकर के बार–बार व्यक्ति विचार करता है कि– क्या मैं बूढ़ा होऊंगा, रोगी होऊंगा,मरूंगा? यह संसार में जो मुझे दिखाई दे रहा है, जो मेरा परिवार है, जो मैंने इतना लंबा चौड़ा सम्बन्ध बनाया है, ये संसार में सैकड़ों हजारों व्यक्तियों के साथ मधुर संबंध हैं, क्या ये सदा बने रहेंगे? मेरी बहुत बड़ी ख्याति है। क्या ये ख्याति मेरे मरने के बाद पक्की समाप्त हो जायेगी? आध्यात्मिक आदमी अपनी मृत्यु को ज्ञान–विज्ञान के आधार पर आज इस समय उपस्थित कर लेता है। उसी पल महसूस कर लेता है कि– ये लो मैं मर गया। जैसे वास्तव में मरने के बाद व्यक्ति की स्थिति होती है, मरकर पता नहीं, कहाँ गया वो। उसका शरीर नष्ट हो जाता है, उसके सारे संबंध टूट जाते हैं। ऐसे ही आध्यात्मिक आदमी, अपनी मृत्यु के समान स्थिति मन के अंदर उत्पन्न कर लेता है। जैसे मृत्यु होने के बाद में किसी का किसी से संबंध है ही नहीं, बिलकुल संबंध नहीं बनता। मरने के बाद वह कहां गया, कोई नहीं जानता। यह सही है कि अधिकांश व्यक्ति इसी धरती पर से आये हैं। पीछे उनका परिवार था, बेटे–पोते भी थे, कोई मकान भी था, प्रतिष्ठा थी,सम्मान भी था। कल्पना कीजिये कि– हम उसी नगर, गली, पड़ोस में आ गये हों, हो सकता है उसी घर में आ गये हों। यह एक सम्भावना है, लेकिन इसका पक्का पता चलेगा नहीं। योगी व्यक्ति इस प्रकार अपने आप से प्रश्न

करके उसका समाधान निकालता है कि– मैं मरूंगा। **मरने के बाद मेरी ये स्थिति होगी कि सारे संसार का मुझसे संबंध बिलकुल टूट जायेगा। किसी माँ के पेट में जाकर के मुझे नये सिरे से सारे संसार का ताना–बाना बुनना पड़ेगा।** जो आज हमने 60,70,80 वर्ष की उम्र तक पहुँचते–पहुँचते ताना–बाना बुना, अपना व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक संसार बनाया, मृत्यु होने पर वो सारा संसार छूट जाता है। फिर जीवात्मा नया संसार बनाता है। जब व्यक्ति मृत्यु को अनुमान प्रमाण के आधार पर,सत्य कल्पना के आधार पर अपने मन–मस्तिष्क में ले आता है तो निश्चित रूप से विवेक उत्पन्न होता है।

भूमिका – शरीर होना, आत्मा के दुःख का कारण है, यह बताने के लिए आचार्यवर कहते हैं:–

(6) शरीर जब तक, दुःख तब तक।

आज एक बहुत–बड़ा अज्ञान सारे विश्व के मनुष्यों में यह घर कर गया है कि इस संसार में रहते हुये, शरीर को धारण करते हुये, संसार के पदार्थों को अधिकाधिक प्राप्त करते हुये और येन–केन प्रकारेण किसी भी कार्य को करके भी हम पूर्ण सुखी हो सकते हैं। यह केवल मिथ्या ज्ञान है। इस मिथ्या सिद्धांत के कारण ही व्यक्ति न ईश्वर को ठीक प्रकार से जानने और उसको प्राप्त करने के लिए प्रयास करता है और न उसको प्राप्त करने के मार्ग को जानता है और न ही उस मार्ग पर चलने के लिए विशेष तपस्या करता है, पुरूषार्थ करता है या योजना बनाता है। इस संबंध में लोगों के सिद्धांत बदल गये हैं, परिभाषा बदल गई है। परिभाषा यह बन गई है कि मैं इस संसार में रहता हुआ, शरीर को धारण किया हुआ, अच्छे–अच्छे मकानों में रहता हुआ, पत्नि–बच्चों के साथ में कमाता हुआ, खाता हुआ, पीता हुआ, घूमता हुआ और संसार का सुख लेता हुआ पूर्ण सुखी हो जाऊंगा, पूर्ण स्वतंत्र हो जाऊंगा। यह मिथ्या परिभाषा है। सैद्धांतिक परिभाषा क्या है? **कोई भी व्यक्ति जिसने शरीर धारण किया हुआ है, वह पूर्ण रूप से दुःखों से**

रहित हो ही नहीं सकता। वह चाहे ऋषि भी क्यों न हो, मुनि भी क्यों न हो, चाहे उच्च कोटि का साधक क्यों न हो, संत क्यों न हो, जिसने शरीर को ध ाारण किया हुआ है, जो प्रकृति के बंधन में आया हुआ है, वह व्यक्ति पूर्णरूपेण दु:खों से छूट ही नहीं सकता। शरीर के कारण उसे सोना ही पड़ता है। सोना दु:ख है, क्यों तमोगुण की, अज्ञान–अधंकार की अवस्था में जाये जीवात्मा। शरीर के कारण उसे खाना पड़ता है, क्यों खाये जीवात्मा। जीवात्मा तो नित्य (अमर) है, इसलिए उसे खाने की अपेक्षा नहीं है। मगर शरीर के कारण उसे खाना पड़ता है, शरीर के कारण कपड़े पहनने पड़ते हैं, शरीर के कारण बीमार पड़ता है, शरीर के कारण सारे क्रिया–कलाप करने पड़ते हैं। खिलाओ–पचाओ–निकालो, यह करो,वह करो। इस बात को समझना जरूरी है कि– **इस शरीर के अंदर प्रकृति के साथ जुड़ा हुआ जीवात्मा बंधन को प्राप्त किया हुआ है।** ईश्वर को ठीक प्रकार से जानकर के, समझकर के, उसकी उपासना करके, उसका साक्षात्कार करके और उससे विशेष ज्ञान–विज्ञान प्राप्त करके व्यक्ति अपने अज्ञान को दूर कर सकता है और पूर्णरूपेण ईश्वर को समर्पित होकर के, उसके आदेश के अनुसार अपने जीवन को चला सकता है। वही व्यक्ति अज्ञान जनित जन्म–जन्मांतर के चित्त में बने हुये कुसंस्कारों को नष्ट करने में समर्थ हो सकता है। इसका अन्य कोई उपाय नहीं है। **ईश्वर की उपासना एक बहुत–बड़ा साधन है, इस प्रकृति के बंधन से छूटने का।** ईश्वर कैसा है, ईश्वर की उपासना कैसे की जाए, कब की जाए, किस प्रकार की जाए, इस विषय में बड़ी भ्रान्तियाँ हैं, मिथ्या ज्ञान हैं, संशय बने हैं।

भूमिका– जो होकर रहे, टल न सके, वह अटल चीज है–हमारी जिन्दगी में प्रतिकूलताओं का आना। प्रतिकूलता की अनिवार्यता को बताने के लिए कथन किया है कि:–

(7) सबको सब दिन प्रतिकूलताएं झेलनी पड़ेगी।

प्रतिकूलताएं, बाधाएं, विपरीतताएं, आरोप, अभाव, संकट, दु:ख,

रोग और वियोग आदि की स्थितियां, प्रत्येक व्यक्ति के सामने प्रतिदिन उपस्थित होती हैं। हमारे जीवन में बाधाएं निश्चित रूप से आयेंगी, प्रतिकूलताएं आयेंगी, हमारे प्रति संशय किया जायेगा, हमारी निन्दा भी निश्चित रूप से की जायेगी, हमारा विरोध किया जायेगा, हमारे प्रति दुर्भावनाएं उत्पन्न की जायेंगी, हमारे कहे जाने वाले हमारे साथ में विश्वासघात करेंगे, हमारे साथ छल–कपट करेंगे, हमारे साथ दुर्व्यवहार करेंगे। यह सब निश्चित रूप से होना है। राजा हो या प्रजा, कोई इससे बच नहीं सकता।

भूमिका– प्रतिकूलताओं से उपजे दु:ख से निपटने के लिए दु:ख के एक मुख्य कारण अज्ञान को हटायें। आचार्यवर निर्देश दे रहे हैं कि:–

(8) प्रतिकूलता को ज्ञान से निपटें।

जब ये निश्चित हो गया कि ये प्रतिकूल घटनाएं घटनी ही हैं तो फिर हम क्यों न पहले से सतर्क रहें अथवा क्यों न इसका समाधान निकाल लें। किसी भी प्रतिकूलता आदि के उपस्थित होने पर या तो व्यक्ति उसे सहन करना सीख ले अथवा उसका समाधान करना सीख ले अथवा उसको कुछ काल के लिए टाल दे। इन तीन परिस्थितियों के अतिरिक्त चौथी परिस्थिति यह होती है कि व्यक्ति के सामने समस्या रहेगी, प्रतिकूलता रहेगी और वह उसका समाधान नहीं निकाल पायेगा, उसको दबा नहीं पायेगा, उसको टाल नहीं पायेगा। इसका परिणाम यह निकलेगा कि वह व्यक्ति क्षुब्ध (डिस्टर्ब) रहेगा, चंचल रहेगा, असंतुष्ट रहेगा, शोक की प्रवृत्ति उसके मन में बनी रहेगी, प्रतिशोध की भावना उत्पन्न होगी, अनेक प्रकार के वितर्क (हिंसा आदि भाव) मन में उत्पन्न होंगे। इन्हें दार्शनिक परिभाषा में अनिष्ट (क्लिष्ट) वृत्तियां कहते हैं, क्योंकि ये दु:खों को उत्पन्न किया करती हैं। ऐसी परिस्थितियां पैदा होने पर जो व्यक्ति उनका समाधान नहीं कर पाता है, वह दु:खी हो जाता है। अत: इसका समाधान क्या है, हमको यह समझना चाहिए।

सबसे पहले मस्तिष्क में इस सिद्धांत को बनाना चाहिए कि कभी भी कहीं पर भी अपने–पराये माने गये किसी भी व्यक्ति के द्वारा मेरे सामने

प्रतिकूलता, बाधा या विरोध उत्पन्न किया जा सकता है। निश्चित रूप से मेरे सामने बाधा आयेगी, उलझन आयेगी, घंटे–घंटे में, मिनट–मिनट में, सेकेंड–सेकेंड में आयेगी। सर्वप्रथम तो अपने मानसिक सामर्थ्य को ऐसा बनाना चाहिए कि व्यक्ति तत्काल उस समय गंभीर हो जाए। **अपनी सहनशक्ति इतनी बनाएं कि व्यक्ति के ऊपर नितान्त मिथ्या आरोप भी क्यों न लगाया जाए तब भी वह जब तक आवश्यक न समझे, मिथ्या आरोप लगाने वाले से पूछे नहीं, स्पष्टीकरण की आवश्यकता न हो तो व्यक्ति बोले ही नहीं।** अब यह बात साधारण व्यक्तियों के समझ में नहीं आती है। यह बात लौकिक व्यक्तियों के गले उतरेगी नहीं कि नितान्त झूठा आरोप लगाया जा रहा है जिससे कि मेरी प्रतिष्ठा तो समाप्त होगी ही, लेकिन मेरे साथ में समाज की, राष्ट्र की, आदि–आदि सब प्रकार की प्रतिष्ठा नष्ट होगी। तब ऐसी स्थिति में व्यक्ति सोचता है कि– मैं कैसे इसको सहन कर सकता हूँ? बिल्कुल नहीं सहन करूंगा। मैं तो इसका विरोध करूंगा, पूर्ण प्रतिकार करूंगा आदि–आदि। इस प्रकार वह मन में प्रतिरोध की भावना बनाता है। ऐसे सिद्धांत को सर्वप्रथम बना लेने वाला व्यक्ति कभी भी अपनी मानसिक सहनशक्ति को उच्च स्तर का नहीं बना सकता है। उच्च स्तर के मानसिक स्तर को बनाये रखने के लिए मन में सिद्धांत यह बनाना पड़ेगा कि अत्यंत आवश्यक होने पर ही मैं मेरे ऊपर लगाए गये आरोपों, संशय आदि–आदि, जो प्रतिकूलताएं सामने आयेंगी, उसके विषय में बोलूंगा अन्यथा उनको नितान्त सहन कर लूंगा। मैं किसी को उलाहना नहीं दूंगा। मैं यह मानता हूँ कि **हर व्यक्ति स्वतंत्र है, इसलिए वह मेरे विषय में कुछ भी विचार कर सकता है, बोल सकता है, कर सकता है।** हाँ, जब उससे पूछा जाए या उसे यह अनुभव हो कि मेरे उत्तर न देने पर अन्यों को कष्ट होगा या समाज की बहुत–बड़ी हानि होगी। इन दो परिस्थितियों के अंदर व्यक्ति अत्यंत मधुरता से, संयमित होकर के, गंभीरता से, उन मिथ्या आरोपों से या जो मिथ्या स्थिति उत्पन्न हो गई है, उसका परिष्कार करे, उसका खंडन करे।

आध्यात्मिक व्यक्ति के जीवन के अन्दर इस प्रकार के प्रयोग निरन्तर होते रहना चाहिए। जैसे एक आदमी स्पष्ट रूप से हमारे ऊपर मिथ्या–आरोप लगा रहा है, हमारे बारे में साफ झूठ बोल रहा है, स्पष्ट विश्वासघात कर रहा है, छल–कपट कर रहा है, अन्याय कर रहा है, पक्षपात कर रहा है तो भी हम उसको अत्यंत प्रसन्नता से बिल्कुल अंदर सह जाएं। उसकी कुछ भी प्रतिक्रिया न करें। यह बहुत ऊंचे आध्यात्मिक स्तर वाले व्यक्ति की बात है, लेकिन जो इस कार्य को कर लेता है, वह अपने मन को स्टील के समान बना लेता है। इसका परिणाम यह निकलता है कि इस प्रकार की **घटनाओं को सहन करने के उपरांत जो सांसारिक प्रलोभन हैं, वे उसको खींचते नहीं हैं।** इस बारे में दर्शनों में आया है कि विषय–वस्तुएं चुम्बक के समान हैं और मन लोहे के समान है। आप हर आध्यात्मिक आदमी का उदाहरण ले सकते हैं। स्वामी दयानंद के जीवन को देख लो। लोगों ने उनके साथ शास्त्रार्थ किया, लोगों ने उन्हे पत्थर मारे, जूते फेंके, पता नहीं क्या–क्या बुरा किया। लेकिन वापस घर में आकर के मिलने वाले लोगों से उन्होंने चर्चा तक नहीं की कि आज मेरे साथ क्या हुआ, क्या धोखा–धड़ी की गई, क्या झूठे आरोप लगाये। उस आदमी की कितनी सहनशक्ति थी, जिसके बल पर वह कभी दुःखी और निराश नहीं हुआ।

भूमिका–वैराग्य असम्प्रज्ञात समाधि का साधन है। आचार्यवर वैराग्य प्राप्ति के साधन का निर्देश कर रहे हैं:–

(9) विवेक से वैराग्य पैदा होता है।

आपने शायद सुना होगा कि जब कोई बड़ा वैद्य या डाक्टर किसी को बता दे कि आपके शरीर की स्थिति ऐसी है कि अब आप दो चार वर्ष नहीं, दो चार महीने नहीं, दो चार हफ्ते ही बड़ी मुश्किल से निकाल पायेंगे। यह सुनकर उसके मस्तिष्क में यह बात बैठ जायेगी। ऐसा ज्ञान उत्पन्न होते ही व्यक्ति के मन में वैराग्य उत्पन्न होता है। आप प्रत्यक्ष उदाहरण देखेंगे। आपने अस्पताल में कभी मार–पिटाई या झगड़े होते देखें है? कभी नहीं देखा होगा।

अस्पताल में कभी मार–पिटाई नहीं होती, न शोर–शराबा होता है, न हो–हल्ला होता है, न तू–तू मैं–मैं होती है, न झूठ, छल–कपट का व्यवहार होता है। बिल्कुल शांति बनी रहती है। कोर्ट में जाइये आप, वहां पुलिस वाले होते हैं, जज होते हैं, जिनके मुकदमें चल रहे होते हैं, वहाँ पर भी ऐसी स्थिति होती है। पुलिस स्टेशन में स्थिति ऐसी है। श्मशान गृह में भी जाइये । वहां लोग इतनी ऊँची बातें करते हैं कि बहुत बड़ा विद्वान व्यक्ति भी नहीं करता। इतनी ऊँची बातें करते है कि सब अनित्य है, सब बेकार है, सब जाने–वाला है, टूटने वाला स्वप्नवत है। मगर, श्मशान से वापिस लौटकर के फिर वही उल्टी बातें करेंगें। ये जो जेल हैं, ये जो अस्पताल हैं, ये जो न्यायालय हैं, इनमें जाने वाले व्यक्तियों के मन के अंदर वैराग्य उत्पन्न होता है। किसी को दुरावस्था में देखते ही वैराग्य उत्पन्न होता है। इसी प्रकार पशु–पक्षियों को कारागृह में देखने से वैराग्य उत्पन्न होता है। किसी बूढ़े व्यक्ति को या किसी मरे हुए व्यक्ति को देखने से भी वैराग्य उत्पन्न होता है। इस प्रकार की जो घटनायें घटती हैं, योगी इन घटनाओं को अपने मन में उपस्थित कर लेता है और उपस्थित करके जैसे किसी को कहा जाये कि दो–चार सप्ताह में मृत्यु है, वैसा ही वो मान के चलता है कि जीवन अभी–तत्काल बीतने वाला है। देखते–देखते मेरे को 50 वर्ष, 60 वर्ष हो गये हैं और बस ये घड़ी रूकेगी नहीं, चलती रहेगी। मुझे रोग लग गयें हैं, इन्द्रियां शिथिल हो गयी हैं, हिलना–डुलना कम हो गया है। जो इन्द्रियों का, बल का, धन का, प्रतिष्ठा का, सम्मान का अभिमान था, वो सब समाप्त हो गया है। धीरे–धीरे व्यक्ति जीर्ण–शीर्ण हो जाता है। ऐसी स्थिति में योगी व्यक्ति अपने को इस रूप में ले जाता है कि सब छूटने वाला है, ये मेरा है ही नहीं, जो मैं लाया नहीं हूँ, वो मेरा रहेगा ही नहीं। अतः मिथ्या अभिमान किस बात का करना। इस प्रकार विवेक उत्पन्न करने से व्यक्ति के मन में वैराग्य उत्पन्न होता है।

भूमिका– दाता की परीक्षा अकाल में, शूरवीर की युद्ध में, मित्र की आपातकाल मे और पत्नि की निर्धनता में होती है। व्यक्ति के आचरण

की दृढ़ता की परीक्षा कब होती है, आचार्यवर बताते हैं:–

(10) व्यक्ति की परीक्षा संकट में होती है।

व्यक्ति की परीक्षा प्रतिकूलताओं के उपस्थित होने पर होती है। अनुकूल परिस्थितियों में तो कोई भी व्यक्ति प्रसन्न, संतुष्ट, शांत, सुखी और निर्भीक बना रहता है। जीवन पथ पर विपरीतता, विरोध, संकट, अभाव, अन्याय, पक्षपात, आरोप, विश्वासघात, छल–कपट, निन्दा, हानि, रोग और वियोग की स्थितियां भी बनती हैं। इन प्रतिकूल परिस्थितियों के उपस्थित होने पर जो व्यक्ति अपनी मन की स्थिति को नहीं बिगड़ने देता है, उस व्यक्ति को हम कह सकते हैं कि यह व्यक्ति आध्यात्मिक मार्ग पर आरूढ़ है, इसने कुछ अच्छी स्थिति प्राप्त की है, यह कुछ परिपक्व हुआ है।

झूठ बोलने की आवश्यकता व्यक्ति को हर समय नहीं होती है। क्रोध ा हर समय उत्पन्न नहीं होता है। चोरी करने की आवश्यकता हर समय नहीं होती है। इसी प्रकार प्रत्येक समय इन्द्रियों के भोगों की ओर व्यक्ति आसक्त नहीं होता है । हाँ मगर जब अभाव होता है, जब प्रतिकूलता आती है, जब कोई कष्ट होता है, जब बाधा होती है, पीड़ा होती है, तभी व्यक्ति के मन में ये हिंसा आदि वितर्क उत्पन्न होते हैं। प्रायः सामान्य परिस्थिति में कोई व्यक्ति न झूठ बोलता है, न क्रोध करता है, न चोरी करता है, न इन्द्रिय–आसक्त होता है, न कुछ छुपाता है। विशिष्ट परिस्थितियों में ही व्यक्ति इन हिंसा, झूठ आदि वितर्को को मन में उत्पन्न करता है ।

कितना सरल सिद्धांत है कि **प्रतिकूलताएं जब भी उपस्थित होती हैं, उस समय यदि व्यक्ति का स्तर गिर जाता है तो समझ लेना चाहिए कि वह उच्च स्तर का आदमी नहीं है।** प्रतिकूल स्थितियों में उसके मन में किसी प्रकार का वितर्क उत्पन्न नहीं होता है तो निरीक्षण–परीक्षण के माध्यम से वह यह निर्णय निकाल सकता है कि मैंने कुछ अच्छी स्थिति प्राप्त की है। यह भी एक सर्वमान्य, सार्वभौमिक सिद्धांत है। यह सबके ऊपर लागू होता है।

भूमिका–मनुष्य मात्र के लिए सबसे प्रथम और प्रधान कर्त्तव्य क्या

है,जिसके लिए मनुष्य जन्म मिला। आचार्यवर यह बताते हैं:–

(11) शरीर के बंधन से छूटकर मोक्ष प्राप्ति के लिए मनुष्य जन्म मिला है।

हमें सोचना चाहिए कि मनुष्य जन्म हमें क्यों मिला है, इसका उद्देश्य क्या है, मनुष्य जन्म को प्राप्त करके व्यक्ति को क्या करना चाहिए। शास्त्र और ऋषि–मुनि एक स्वर में इस बात को बताते हैं कि मनुष्य जीवन का लक्ष्य है– बंधन से छूटने का प्रयास करना। यह बंधन से छूटने का प्रयास क्या है और बंधन क्या है, इसको भी पहले समझना चाहिए। प्रकृति के साथ जब मनुष्य जुड़ जाता है तो उस स्थिति का नाम बंधन है। हम जीवात्मा जो शरीरधारी हैं, प्रकृति के साथ जुड़े हुये हैं। प्रकृति के साथ जुड़ने का मतलब है– आत्मा का शरीर को धारण करना, मन इन्द्रियों के साथ में मिलकर के काम करना, बुद्धि के साथ मिलकर के कार्य करना। बिना प्रकृति के जीवात्मा का कार्य इस बंधन की स्थिति में होता ही नहीं है। जीवात्मा जब बद्ध हो जाता है तो प्रकृति की सहायता होती ही है। जब मुक्त होता है तब प्रकृति की अपेक्षा (आवश्यकता) नहीं रहती है।

(12) हमारे पास बहुत ज्ञान–विज्ञान है ।

पिछले जन्मों में निश्चित रूप से कभी हम द्विज (ब्राह्मण) रहे हैं। पिछले जन्मों में हमने वेदों का अध्ययन किया है, गुरूकुलों में गये हैं,विवेक,वैराग्य की बातें सुनी हैं,हमारा जीवन त्याग से, तपस्या से और निष्काम भावना से युक्त रहा है। इसमें मुझे कोई संशय नहीं है। मुझे इस बात में भी संशय नहीं है कि हमने दर्शन, उपनिषद या वेद नहीं पढ़े हैं। **पिछले जन्मों में हमने वेद भी पढ़ें हैं, उपनिषद भी पढ़ें हैं, वैदिक ग्रन्थों का खूब अध्ययन किया है।** वास्तविकता यह है कि हमको उद्बोधक व्यक्ति नहीं मिलता है, प्रेरक व्यक्ति नहीं मिलता है। अगर प्रेरक मिलता है तो प्रेरणा प्राप्त नहीं होती है। प्रेरणा प्राप्त होती है तो वह मन में स्थिर नहीं रहती है। स्थिर होती है तो उसको आगे बढ़ाने के लिये व्यक्ति प्रयास नहीं करता है, तपस्या नहीं करता है, संघर्ष

नहीं करता है, संकल्पों को मन में धारण नहीं करता है। अपने लक्ष्य के प्रति सजग न रह कर के फिर संसार की ओर दृष्टि भटक जाती है और बाहरी आलम्बनों में घिर करके, समस्याओं में उलझ करके वह फिर अपने स्तर को खो देता है। वह पुनःलौकिक बन जाता है। वस्तुतः हरेक विषय में बहुत ज्ञान–विज्ञान हमारे पास में है। . व` द मंत्र में एक शब्द आया है– सोम। **संस्कृत भाषा के अंदर एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं।** दूसरी भाषाओं के अंदर प्रायः एक शब्द का एक ही अर्थ होता है। यह संस्कृत की विशेषता है। हिन्दी के अंदर भी कुछ–कुछ शब्द मिलेंगे, जिनके अनेक अर्थ होते हैं। सोम शब्द के सैकड़ों अर्थ हैं, अग्नि के सैकड़ों अर्थ हैं, इन्द्र के सैकड़ों अर्थ हैं। सोम शब्द का अर्थ है– ''जीवात्मा''। जीवात्मा का नाम सोम है। ईश्वर कहता है– ऐ जीवात्मा, तू सोम है। तुझमें अपार शक्तियाँ हैं अर्थात् जीवात्मा शक्तियां प्राप्त कर सकता है। मैं आपसे एक प्रश्न करता हूँ–क्या आपको चार वेद स्मरण हैं? हो सकता है आप कहें कि नहीं। जबकि ऐसी बात नहीं है। हम अनुमान प्रमाण से, शब्द प्रमाण से, अच्छी प्रकार से मानते हैं कि हम सबने वेदों को, उपनिषदों को, स्मृतियों को, दर्शनों को याद किया है। इन सबके संस्कार हमारे अंदर विद्यमान हैं। मैंने पिछले जन्म में या उसके पिछले जन्म में, रामायण के काल में, महाभारत के काल में ये सब स्मरण किये हैं। सृष्टि को बने हुए 1,96853000 वर्ष हो गये हैं। महाभारत के काल में हम क्या पढ़ते थे? यही तो पढ़ते थे गुरूकुलों में। उन व्यक्तियों को छोड़ दीजिये जो तत्काल मुक्ति से पृथ्वी पर वापस आये हो। हम सबने पूर्व जन्म में वेदों को पढ़ा है। हमारी आत्मा के अंदर चारों वेदों के और उपनिषदों के संस्कार विद्यमान हैं। जरूरत इस बात की है कि उस सामर्थ्य को जगायें।

भूमिका– पूर्वजन्म में हमने किसी विषय का ज्ञान प्राप्त किया था और यज्ञ, साधना आदि कर्म किये थे, जिनकी छाप मन में संस्कारों के रूप में अंकित है। इन्हे उभारकर व्यक्ति अपनी सामर्थ्य को बढ़ा सकता है।

आचार्यवर कहते हैं:–

(13) संस्कार जगायें, सामर्थ्य बढ़ायें।

ये सत्संग क्या है, ये स्वाध्याय क्या है, ये चर्चा क्या है, ये साधना क्या है, ये जप क्या है, ये आत्म–चिंतन क्या है, ये आत्म–निरीक्षण क्या है? ये सब संस्कारों को उभारने के साधन हैं। इनके माध्यम से हमारे जन्म–जन्मांतर के संस्कार उभरते हैं। आप देखेंगे कि अनेक प्रकार के व्यक्ति केवल एक बार किसी एक अच्छे प्रवचन को सुनते हैं परन्तु इतने पर ही उनके वैराग्य के संस्कार जग जाते हैं और वे घर–बार छोड़ के चले जाते हैं। यहां आश्रम में भी आते हैं बहुत से ऐसे व्यक्ति। थोड़ा–बहुत सुना, थोड़ा–बहुत पढ़ा, उतने पर ही आप यहां पर आये। करोड़ों व्यक्ति दुनिया में हैं। इतने दूर से कष्ट उठा कर के आप ही क्यों आये। यहां भोजन, वस्त्र आदि की अनेक प्रकार की प्रतिकूलताएं हैं। फिर भी आप आये क्योंकि आपके अंदर संस्कार हैं। ऐसे संस्कार हैं कि मैं भी ईश्वर को जानूं, मैं भी समाधि लगाऊं, मैं भी आध्यात्मिक आनंद को प्राप्त करूं, मैं भी शांत हो जाऊं, मैं भी निर्भीक हो जाऊं, मैं भी तृप्त हो जाऊं, मैं भी स्वतंत्र हो जाऊं। आपमें ऐसे संस्कार हैं, तभी ये संस्कार खींचकर के आपको इस आश्रम में लाये हैं। **आत्मा के अंदर अनेक प्रकार के संस्कार हैं।**

यह जो आपको शरीर मिला है, यह बहुत–बड़ी शक्ति है। मन–इन्द्रियां, शरीर और आध्यात्मिक ज्ञान–विज्ञान यह बहुत बल है हमारे अंदर। इसलिए आत्मा को वेद मंत्र में कहा है–सोम। आप देखेंगे कि संसार के अंदर हजारों नहीं, लाखों नहीं, करोड़ों व्यक्ति आज मिलेंगे। वही दो आँखे हैं, वही दो हाथ, सब कुछ वही है लेकिन इसी प्रकार का शरीर प्राप्त करके वे बड़ी मुश्किल से पेट की आग बुझाते हैं। वे बड़ी मुश्किल से अपनी पत्नि, बाल–बच्चों का लालन–पालन कर पाते हैं। उनके पास कपड़े पहनने को नहीं हैं, धन नहीं है, घर नहीं है, वाहन नहीं है। वे बड़ी मुश्किल से अपना जीवन चला रहे हैं। उन्हें मजदूरी में रोज 50 या 100 रुपया भी नहीं मिलता है। ऐसे करोड़ों व्यक्ति

आज इस देश के अंदर हैं जो कि प्रातःकाल मजदूरी करने जायेंगे और शाम तक 50 या 100 रुपये कमाकर के जीवन व्यतीत करेंगे। दाल, चावल, दूध, साग–सब्जी लेकर आयेंगे, बनाकर खायेंगे, बचा हुआ कल खायेंगे। दक्षिण की ओर जाइये, पूर्व की ओर जाइये, पश्चिम की ओर जाइये। **आपको देश में करोड़ों व्यक्ति मिलेंगे जो अपनी पेट की आग नहीं बुझा पाते हैं, लेकिन दूसरी तरफ उतने ही हाथ–पांव, आँख वाले व्यक्ति अपने को, अपने परिवार को और अपने संबंधियों के साथ–साथ सैकड़ों, हजारों, लाखों व्यक्तियों को आजीविका प्रदान करते हैं।** आप देखेंगे कि देश में सैकड़ों उद्योगपति विद्यमान हैं। उनके पास सामर्थ्य है। हमारे यहां पर एक उद्योगपति थे धीरूभाई अंबानी, रिलायंस वाले। ये 30, 40 वर्ष पुरानी बातें हैं। थोड़े से पैसे से बढ़ते–बढ़ते देश के बहुत बड़े उद्योगपति बन गये। आपने निरमा का नाम सुना होगा। कुछ साल पहले इसका मालिक साईकिल के ऊपर पाऊडर की थैलियाँ बनाकर बेचता था। आज भारतवर्ष का बहुत बड़ा साबुन का व्यापारी बन गया। इसके पास करोड़ों अरबों की सम्पत्ति है। इसने अपने सामर्थ्य को, शक्ति को, ज्ञान को और अपने पुरूषार्थ को जगाया और आज इस मुकाम पर पहुंच गया। यह लाखों व्यक्तियों को रोजगार दे रहा है। इससे देश व समाज का कितना भला हो रहा है।

हमारे में सामर्थ्य है। सोम शब्द का अर्थ है– सामर्थ्य। जिसके पास ज्ञान–विज्ञान, बल, योग्यता, विद्या है, उसका नाम है– सोम। दूसरी बात जो इन चीजों को प्राप्त कर सकता है, धन को प्राप्त कर सकता है, विद्या, बल, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, यश आदि को प्राप्त कर सकता है, साम्राज्य को प्राप्त कर सकता है, उसका नाम है–सोम। ये व्यक्ति जो आज देश के राजा बने हुये हैं, मनमोहन सिंह, अटल बिहारी बाजपेयी। इनमें भी दो ही आँखें हैं, वही सामर्थ्य इनमें है। इन्होंने अपने शक्ति, बल, सामर्थ्य का सही ढंग से प्रयोग किया और इनकी अपनी बुद्धि ने इनको आज राजा बना दिया। आपको क्या लगता है – क्या आप और हम सभी लोग कभी किसी समय ऐसी पृथ्वी के

चक्रवर्ती सम्राट बने हैं कि नहीं? बिल्कुल बने हैं। पक्की बात है कि **अनादि काल से चल रही इस सृष्टि में कभी न कभी हम भी इस पृथ्वी के चक्रवर्ती सम्राट बने हैं।** जैसे हम अनंत बार मुक्ति में गये हैं, वैसे ही अनंत बार ऐसी पृथ्वी के राजा बने हैं और आगे भी बनेंगे।

भूमिका– जहाँ देह वहाँ कर्म, जहाँ कर्म वहाँ फल, यह नियम है। निःसंदेह जीव अपने कर्मवश ही सुख–दुःख पाता है। इसलिए जिस कर्म का लक्ष्य सुख और सफलता की ओर है, उसे करो, मगर अज्ञानपूर्वक कर्म मत करो। आचार्यवर निर्देश करते हैं कि:–

(14) क्या करें, क्या न करें, यह पता होना चाहिए।

मैं आप ब्रह्मचारियों को एक ही बात बताता हूँ कि अधिकांश विद्यार्थियों में आग नहीं है। न शरीर बनाने की आग है इसलिए कोई इतना तगड़ा होता दिखाई नहीं दे रहा है। न घी खा रहे हैं, न दूध पी रहे हैं, न अन्न खा रहे हैं। न श्लोकों को, मंत्रों को याद करने की भावना जाग्रत हो रही है, न कोई त्याग–तपस्या, सेवा–समर्पण आदि गुणों को प्राप्त करने की भावना बहुत अधिक ऊंचे स्तर की दिखाई दे रही है। करने में कोई उत्साह नहीं दिखता। प्रारंभिक काल में तो आदमी काम में ऐसा कूदता है कि उसको रोकना पड़ता है। पढ़ाई में रोकना पड़ता है, व्यायाम में रोकना पड़ता है, योगाभ्यास में रोकना पड़ता है।

मुझे क्या करना है, क्या नहीं करना है, क्या करना उचित है, क्या करना अनुचित है, कौन सा कार्य मेरे लिये कर्त्तव्य है, कौन सा अकर्त्तव्य है, कौन सा लाभकारी है, कौन सा हानिकारक है, कौन सा मुख्य है, कौन सा गौण है, कौन सा प्रथम कर्त्तव्य है, कौन सा पश्चात् कर्त्तव्य है, किसमें अधिक समय लगाना चाहिए, किसमें कम समय लगाना चाहिए, इन सब बातों का ज्ञान व्यक्ति को होना चाहिए। जो व्यक्ति इन बातों को ठीक प्रकार से नहीं जानकर के कार्य में प्रवृत्त होता है, वह दुःखी होता है। ऐसा व्यक्ति ठीक कार्य करता नहीं है, गलत कार्यों को करता है, अधूरा करता है, खराब करता है,

बिगाड़ देता है या पूरा नहीं करता है। जिस व्यक्ति के काम पूरे नहीं होते हैं, वह असफल होता है, तो वह दुःखी होता है, उसको पश्चाताप होता है, मन में ग्लानि होती है और उसकी प्रतिष्ठा भी समाप्त हो जाती है। इस से वह हताश–निराश होता है और आगे चलकर के अपने जीवन को नष्ट–भ्रष्ट कर देता है। विनाश का ऐसा क्रम घटित होता है।

हमने श्लोकों को पढ़ा है, इन पर निदिध्यासन (गहत चितंन) किया है, इनको याद किया है, इनको क्रियान्वित करने का प्रयास किया है। जो चीज सुबह ठान लेता हूँ, वह करके ही रहता हूँ, नहीं तो यह स्थिति मेरे को रात में काँटे की तरह चुभती है।

कार्य के विषय में व्यक्ति को चिन्तन करना चाहिए। जो कार्य करने योग्य नहीं है, उसको छेड़ना ही नहीं है। जो करने योग्य कार्य है, उसको करो आप। एक उदाहरण दे रहा हूँ। आपके पास में मोक्ष को प्राप्त कराने वाली पुस्तक आ गई, दर्शन आ गया, उपनिषद आ गया, कोई उपन्यास आ गया और आपकी उसको पढ़ने की इच्छा होती है। मैं कहता हूँ नहीं, वह पुस्तक नहीं पढ़नी है। अब अगर आप पढ़ने की इच्छा रखते हैं अथवा पढ़ लेते हैं तो इस स्थिति में समझ लेना कि आप आध्यात्मिक मार्ग में प्रवृत्त नहीं हो पायेंगे। याद रखें कि– **अच्छे काम को, परोपकार के काम को भी बिना अपने गुरू, आचार्य, निर्देशक, व्यक्ति की अनुमति लिये करना आत्म–हनन है।** संभव है कि आप दिन में अनेक ऐसे कार्य करते होंगे, जो कार्य आपको उस दिन, उस समय न करने योग्य है, न करवाने योग्य है, न विचारने योग्य है, न उसके विषय में चिंता करने योग्य है। वे बिल्कुल गौण कार्य हैं। फिर भी उनको आप विचारते हैं, उनके विषय में चिंता करते हैं, उनके विषय में चर्चा करते हैं, जबकि वे मुख्य कार्य नहीं होते हैं। इसका सूक्ष्म प्रभाव यह पड़ता है कि आप स्वच्छंद रहते हैं।

भूमिका– जब व्यक्ति किसी पदार्थ या क्रिया को स्थायी, हितकर, सुखद और अपने विकास के लिए जरूरी मान लेता है तो यह स्थिति उसके मन

में,उस विषय के प्रति ''श्रद्धा'' को उत्पन्न करती है। यह विश्वास रुचि को, रुचि उस कार्य में प्रवृत्ति को और कार्य में प्रवृत्ति, लक्ष्य हासिल करने में सफलता को उत्पन्न करती है। रुचि के बारे में आचार्यवर कहते हैं:–

(15) जिसमें रुचि, उसमें प्रवृत्ति।

व्यक्ति की जिस किसी विषय में विशेष रूचि होती है, प्रेम होता है, निष्ठा होती है, विश्वास होता है, जो विषय उसे लाभकारी प्रतीत होता है, जिसे वह उपयोगी, सुखदायी और महत्वपूर्ण मानता है, वह उसी के विषय में विचारता है, उसी के विषय में योजनाएं बनाता है, उसी को प्राप्त करने, उसी की रक्षा करने, उसी को बढ़ाने और उसी का उपयोग करने के लिए पूर्ण पुरूषार्थ करता है। व्यक्ति की सारी शक्ति उस महत्वपूर्ण विषय में लग जाती है। उदाहरण के लिए– किसी को खाने में रुचि होती है। वह व्यक्ति खाने के विषय में विचारेगा, चिंतन करेगा कि कहां खाऊं, कितना खाऊं, कैसे खाऊं, कैसे मिलेगा, कैसे साधनों को प्राप्त करूं। इसमें वह पूरी शक्ति लगा लेता है। किसी को शब्द के विषय में, किसी को स्पर्श के विषय में, किसी को रूप के विषय में, किसी को गंध के विषय में, किसी को रस के विषय में विशेष रुचि होती है। ये पांच विषय हैं इन्द्रियों के। ऐसे ही आध्यात्मिक विषय के बारे में जान लें। आध्यात्मिक विषयों में जिसकी रुचि होती है, वह व्यक्ति उसी विषय में अपनी पूरी शक्ति लगा देता है। चाहे ईश्वर हो, चाहे आत्मा हो या तपस्या हो, चाहे सेवा हो या परोपकार हो या अध्ययन हो, चाहे लेखन हो, कोई भी विषय हो, वहीं अपनी पूरी शक्ति लगा देता है। इससे यह सिद्धांत हमारे सामने आता है कि **हमारी आध्यात्मिक विषयों में विशेष रुचि नहीं है, इसलिए उसके प्रति विशेष प्रयास नहीं करते हैं**, चिंतन नहीं करते हैं, समय नहीं लगाते हैं, शक्ति नहीं लगाते हैं, बल का प्रयोग नहीं करते हैं। उस विषय में रुचि न होने का कारण उसमें विश्वास न होना, श्रद्धा न होना,लाभकारी होने की अनुभूति नहीं होना है, उसकी उपयोगिता प्रतीत नहीं होना है, उसके

महत्त्वों को न समझना है। चाहे ईश्वर हो, चाहे समाधि हो, चाहे विवेक–वैराग्य हो, चाहे मौन और गंभीरता हो, चाहे यम–नियम का पालन हो, चाहे आदर्श दिनचर्या हो, चाहे सात्तिवक भोजन हो, चाहे इन्द्रियों पर संयम हो, चाहे एकांत सेवन हो, चाहे निष्कामता हो, इस प्रकार कोई भी आध्यात्मिक विषय आप ले सकते हैं। जिन–जिन विषयों में हमारा अधिक प्रेम है, रुचि है, श्रद्धा है, निष्ठा है, विश्वास है, जो लाभकारी प्रतीत हो रहे हैं, उनमें हमारी प्रवृत्ति होने लगती है। कहा भी है– जहाँ चाह,वहाँ राह।

भूमिका– 'अति' नाश का कारण है, अतः 'अति' को सर्वत्र छोड़कर मर्यादा के अनुकूल काम करना चाहिए, क्योंकि:–

(16) रुचि का अतिरेक दिनचर्या को असंतुलित करता है।

घर–बार छोड़ कर के गुरुकुल में आने वाले ब्रह्मचारियों की अलग–अलग रुचि मिलेगी। यहां गुरूकुल में ऐसी प्रवृत्तियां हम चलने नहीं देते हैं। जिन गुरुकुलों में अन्य बातों पर नियंत्रण करते नहीं हैं, वहां व्यक्ति व्यायाम में इतना बल लगाते हैं कि बस वे रात–दिन व्यायाम में लगे रहते हैं। वे दण्ड–बैठक लगाते ही जायेंगे, लगाते जायेंगे। वे सुबह प्रतीक्षा करते रहते हैं कि कब सांयकाल आयेगा, व्यायाम की घंटी बजेगी और व्यायाम करेंगे। ऐसे ही कब खाने की घंटी बजेगी और खूब डटकर खायेंगे और कब सोने की घंटी आयेगी, खूब जमके सोयेंगे। कुछ गुरूकुलों में विद्यार्थी बस व्यायाम करते रहेंगे, खेलते रहेंगे, खाते रहेंगे, पर न उनको बोलना आता है, न उनको लिखना आता है, न कोई व्यवहार करना आता है। उनके जीवन में न कोई ईश्वर प्रणिधान है, न कोई उपासना है, न कोई अध्ययन है, न कोई प्रवचन है, न कोई सेवा–परोपकार है। बस ऐसे ही शरीर में माँस इकट्ठा करते रहते हैं। जिनकी अध्ययन में रुचि होती है, वे किताबी कीड़े की तरह लग जाते हैं और पुस्तकों के बीच में पड़े रहते हैं। उन्हें न व्यायाम करना, न भोजन करना, न तपस्या करना है। ऐसे ही उपासना के विषय में भी अति हो सकती है। वे

दिनभर अपने काम में मस्त रहेंगे बस, अपने एकांत में रहेंगे, अपना ध्यान करेंगे और अपने कार्यों को करते रहेंगे, भोजन भी करते रहेंगे, व्यायाम भी करते रहेंगे, कपड़े भी धोते रहेंगे, लेकिन सेवा परोपकार के कार्य में कुछ नहीं करेंगे, अध्ययन भी नहीं करेंगे। वे एकांगी होते हैं। गुरूकुलों में किसी की व्यायाम में रुचि होती है, किसी की अध्ययन में, किसी की नेता बनने में रुचि होती है, किसी की प्रवचन देने में, किसी की व्यवस्था में, किसी की बाहर घूमने में, किसी की चर्चा करने में, किसी की हराने में और किसी की निंदा–चुगली करने में रुचि होती है। ये उदाहरण मात्र हैं। सिद्धांत हमारे पास यही आया कि **जिस विषय में रुचि होती है, व्यक्ति की श्रद्धा, निष्ठा,प्रेम,विश्वास आदि–आदि बने होते हैं, उस विषय में व्यक्ति अपनी पूरी शक्ति लगा देता है।** उसके विषय में बल लगाता है, पुरूषार्थ करता है, साधनों को जुटाता है और कार्य करता है।

भूमिका– प्रत्येक व्यक्ति की रुचि एक दूसरे से भिन्न होती है। हमें किस विषय में रुचि उत्पन्न करना चाहिए, यह आचार्यवर बताते हैं:–

(17) ईश्वर, जीव और प्रकृति के विषय में रुचि पैदा करें।

जीवन में सुख–शांति हासिल करने के लिए हमें ईश्वर के विषय में रुचि उत्पन्न करनी चाहिए, आत्मा के विषय में रुचि उत्पन्न करनी चाहिए कि मैं कौन हूँ। मन, बुद्धि, इन्द्रियों के विषय को जानने में रुचि करनी चाहिए। तभी हम चिन्ता, तनाव, दुःख से बचे रह पायेंगे और सच्चे सुख को प्राप्त कर पायेंगे।

भूमिका– प्रयत्न देवता है, सफलता का साधन है, इसलिये हे मनुष्य, कर प्रयत्न और पा सफलता :–

(18) सफलता के लिये प्रयास जरूरी है।

सामान्य जीवन में प्राकृतिक प्रकोपों को हम टाल नहीं सकते। आप प्राकृतिक प्रकोपों को छोड़ दीजिए। **हम 18 के 18 घंटे शांत, प्रसन्न, सुखी**

और सन्तुष्ट रह सकते हैं । यह हमारे हाथ में है कि हमारे मन में एक भी दुर्भावना उत्पन्न ना हो, यम–नियम के विरूद्ध आचरण (विर्तक) ना हो। सतत ईश्वर की आज्ञा में हम चल सकते हैं। यह जरूर है कि इसके लिए पहले प्रयास करना पड़ता है। अपने सामर्थ्य, शक्ति को देखकर के काम करना पड़ता है। कोई भी कार्य जो ऐसी स्थिति में बाधक है, उनको छोड़ना पड़ता है। चाहे वह कार्य भोजन ही क्यों न हो, चाहे लिखना क्यों ना हो, चाहे पढ़ना क्यों ना हो। दस इन्द्रियों पर संयम करके जितना कार्य कर सकते हैं, उन कार्य को करना पड़ता है। ऐसा बिल्कुल हो सकता है, ऐसी स्थिति बना सकता है व्यक्ति। जरा प्रयोग करके तो देखिये आप। किसी का मन अत्यंत चंचल है। दिन में अत्यन्त प्रतिकूल वितर्क उत्पन्न होते हैं, लौकिकता सांसारिकता बनी रहती है, रजोगुण, तमोगुण बना रहता है, स्वार्थ की प्रवृत्ति बनी रहती है। वह व्यक्ति चार–चार घंटे में प्रयोग कर सकता है। दो–दो घंटे में कर सकता है। एक घंटे बैठकर के प्रयोग कर सकता है कि हां, आनंद आता है मुझे। मगर इसके लिए लौकिकता छोड़नी पड़ती है। स्वार्थ,आलस्य,प्रमाद आदि इन क्रियाकलापों को छोड़ना पड़ता है, तब जाके बात बनती है। **अर्न्तवृत्ति बनकर के,सतर्क एवं सावधान होकर के संकल्पों को और आदर्शों को लेकर, पूर्ण पुरूषार्थ और तपस्या के साथ में जो व्यक्ति चलता है,वह इस स्थिति को प्राप्त कर सकता है।** एक दिन में प्राप्त कर सकता है। आगे सतत चलते–चलते इसके संस्कार बन जाते हैं। आपस में एक–दूसरे के विशेष गुणों को देखकर के हम अपने अवगुणों का पता लगा सकते हैं। हर एक व्यक्ति के अलग–अलग गुण हैं। अगर हमारे में उन गुणों का अभाव है तो हम प्रयास कर उन गुणों को अपने अंदर ला सकते हैं और सफल व सुखी हो सकते हैं।

भूमिका–अपने भले के लिए अपने कर्त्तव्यों को भली–भाँति समझना चाहिए। आचार्यवर कहते हैं:–

(19) अपने कर्त्तव्यों को जानो।

हमारा सामाजिक और राष्ट्रीय कर्त्तव्य क्या है, विश्वस्तर का कर्त्तव्य

क्या है, इस विषय में कुछ जानने का प्रयास करेंगे। हमारे कर्त्तव्य 5 प्रकार के होते हैं (1) व्यक्तिगत (2) पारिवारिक (3) सामाजिक (4) राष्ट्रीय और (5) विश्व स्तरीय। ये पांचों हमारे कर्त्तव्य हैं। विवेकी व्यक्ति को इन पांचों कर्त्तव्यों को पूरा करना चाहिये।

भूमिका– कौन सा काम पहले करना और कौन सा बाद में, ये बताने के लिए आचार्यवर निर्देश दे रहे हैं कि:–

(20) व्यक्तिगत कर्त्तव्यों का पालन सबसे पहले किया जाना चाहिए।

सबसे पहला कर्त्तव्य व्यक्ति का,अपने व्यक्तिगत जीवन का निर्माण करने का है। पहले विश्व निर्माण की बात को नहीं विचारना चाहिए, राष्ट्र की बातों को इतना ध्यान नहीं देना चाहिये, समाज की बातों को गौण रखकर के चलना चाहिए। परिवार के प्रति व्यक्ति का कर्त्तव्य इतना मुख्य नहीं होना चाहिए। सबसे पहले 25 वर्ष तक अर्थात् ब्रह्मचर्य के काल तक व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत जीवन के निर्माण के लिए अपने तन–मन–धन शक्ति, बल और समय का प्रयोग करना चाहिए। पहले स्वयं बलवान बनें, सशक्त बनें, विद्वान बनें,धार्मिक बनें,आस्तिक बनें,परोपकारी बनें,तपस्वी बनें,त्यागी बनें। अपवाद स्वरूप आपत्ति काल को छोड़ दें तो 25 वर्ष तक राष्ट्र के विषय में विचार नहीं करना चाहिए।

सामान्य रूप से विद्यार्थी काल के अंदर व्यक्ति को व्यक्तिगत जीवन का निर्माण करना चाहिए। जब व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन का निर्माण कर लेता है, पढ़ाई पूरी हो जाती है, आगे पढ़ता नहीं है या योग्यता नहीं है तो वह तपस्या के, ज्ञानार्जन के कार्यो को छोड़कर के गृहस्थ में आ जाता है। अतः सामाजिक व्यक्ति बन जाता है। उस समय व्यक्ति के ऊपर सामाजिक, राष्ट्रीय और विश्वस्तर के कर्त्तव्यों का भार आता है। हमारी गली में क्या हो रहा है, हमारे गांव में क्या हो रहा है, हमारे समाज में क्या हो रहा है, राष्ट्र में क्या हो रहा है, विश्व में क्या हो रहा है, व्यक्ति को उसके विषय में अवश्य

विचार करना चाहिए। अच्छी बातों का समर्थन और बुरी बातों का प्रतिरोध करना चाहिए।

(21) सर्वप्रथम व्यक्तिगत जीवन का निर्माण करें।

व्यक्तिगत जीवन का निर्माण पहले करें। जब तक व्यक्तिगत जीवन का निर्माण नहीं होगा, तब तक परिवार के जीवन का निर्माण नहीं होगा। यह मूल इकाई (बीज) है। **व्यक्ति का निर्माण होगा तो परिवारों का निर्माण होगा। परिवारों का निर्माण होगा तो समाज का निर्माण होगा। समाजों का निर्माण होगा तो आगे चलकर गाँव का, प्रान्त का, राष्ट्र का और विश्व का निर्माण होगा।** यह निर्माण की प्रक्रिया है। हम अपने जीवन का निर्माण कैसे करें, कैसे दुःखों से बचें, आत्मा कैसे पवित्र हो,जीवन श्रेष्ठ कैसे हो,महान कैसे हों, पहले यह जानना अत्यंत आवश्यक है।

भूमिका–जिस आसरे या आधार पर महल खड़ा होता है, वह बुनियाद मजबूत न हो तो महल धराशायी हो जाता है। इसलिए आचार्यवर कहते हैं:–

(22) अपनी नींव मजबूत करें।

अपनी नींव को मजबूत करें। नींव कमजोर है तो व्यक्ति धराशायी हो जाएगा। जितना ऊंचा मकान बनाना है, उतनी नींव गहरी होती है। अगर 100 फीट ऊंचा मकान बनेगा तो 2 फीट की नींव नहीं डाली होगी, 25–30 फीट गहरी नींव होगी और नींव की मोटी दीवारें होंगी। नींव के ऊपर एक फीट की दीवारें होती हैं लेकिन नींव की दीवारें नीचे ज्यादा मोटी होती हैं। **मैं विद्यालय और गुरुकुलों के अधिकांश विद्यार्थियों को व्यवहार के अंदर हिलते हुये देखता हूँ।** अधिकांश के अंदर स्थिरता नहीं है। जैसे पेड़ के पत्ते हिलते हैं, वैसे वे हिलते हैं। छोटे–छोटे नियमों में पूर्ण श्रद्धा नहीं है, पूर्ण विश्वास नहीं है इसलिए उससे डिग जाते हैं, च्यूत हो जाते हैं। आपने बड़े–बड़े मकानों की नींव बनते हुये देखी होगी। लगभग 40 वर्ष पुरानी बात है। एक 5–6 मंजिला अस्पताल बन रहा था। नीचे 5–6–7–8 फीट गहरा

गड्ढा खोदकर के उसमें नींव बना रहे थे। नींव पूरी बनी नहीं थी और उसमें पानी डाल रहे थे। मेरे स्कूल के रास्ते में वह अस्पताल आता था। मैंने मजदूरों से पूछा–यह नींव बने हुये 15 दिन हो गये हैं, मगर ऊपर निर्माण कार्य शुरू नहीं कर रहे हैं। उन्होंने कहा– इसमें जो सीमेंट डाली है, पत्थर डाले हैं, लोहा डाला है, वह जब तक आपस में जकड़ न जाये तब तक निर्माण शुरू नहीं करेंगे। पानी जब एक दूसरे को जोड़कर बिल्कुल पत्थर का बना देगा, तब हम निर्माण शुरू करेंगे। मैंने पूछा– कितने दिन लगेंगे। उन्होंने कहा– लगभग एक महीना और लगेगा। उस नींव के चारों तरफ लंबा–चौड़ा परिसर था। वहां से मजदूर आते थे। वे दिन भर पानी छिड़कते थे। एक महीने तक नींव लगाई। तब जाकर निर्माण कार्य शुरू किया। प्रारंभिक अवस्था में क्या करना है, कई लोगों को यह पता नहीं। अनुशासन और समर्पण इस मार्ग में अनिवार्य है। जहां समर्पण नहीं है, जहां अनुशासन नहीं है, वहाँ आंतरिक उन्नति नहीं होगी,वास्तविक उन्नति नहीं होगी। **जो सर्मपण और अनुशासन में नहीं चलेगा और जीवन की उन्नति के लिए अनिवार्य नियमों को, सिद्धांतों को, मंतव्यों को, विधि–विधानों को जानकर के अपने जीवन का अभिन्न अंग नहीं बना लेगा, ऐसा व्यक्ति आगे चलकर के कब गिर जाये, इसका कोई भरोसा नहीं।**

भूमिका–सामर्थ्य नहीं है, और मार्ग पर चल दिये तो जीवन समाप्त हो जायेगा मगर सफलता नहीं मिलेगी। जीवन में सफलता के लिए सामर्थ्य की आवश्यकता सबको है। शारीरिक मानसिक बल का संचय कर बलवान बनो, बुद्धिमान बनो और विजयी हो। आचार्यवर कहते हैं किं:–

(23) सामर्थ्य बढ़ायें।

यह बात निश्चित है कि प्रत्येक व्यक्ति के अंदर बहुत बड़ी मात्रा में सामर्थ्य और ज्ञान–विज्ञान छुपा होता है। व्यक्ति को कार्यो में सफलता, ज्ञान और क्रिया इन दोनों के माध्यम से मिलती है। देखने में आता है कि कुछ व्यक्तियों में सामर्थ्य बहुत अधिक होता है और अनेक प्रकार की योग्यतायें

होती है, लेकिन ज्ञान नहीं होता है। इसके विपरीत कुछ व्यक्ति ऐसे मिलते हैं, जिनके पास ज्ञान विज्ञान और अनेक प्रकार के अनुभव होते हैं लेकिन उनके पास सामर्थ्य, बल, कार्य करने की क्षमता आदि नहीं होती है। ये दो प्रकार की स्थितियां मिलती हैं। किन्हीं व्यक्तियों में ज्ञान–विज्ञान भी होता है, और सामर्थ्य भी होता है। लेकिन मार्ग पर चलने पर दुःख होगा, पीड़ा होगी, बाधाायें होंगी, ऐसा मानकर वे उन कार्यो को नहीं करते हैं। एक स्थिति यह होती है कि व्यक्ति के पास ज्ञान और सामर्थ्य होता है। लेकिन उस ज्ञान और सामर्थ्य को उभारने वाला, जगाने वाला, कोई व्यक्ति उसको नहीं मिलता है। परिणामस्वरूप उस ज्ञान–विज्ञान और सामर्थ्य को रखते हुए भी किसी व्यक्ति के प्रेरणादायक आलम्बन के न मिलने के कारण से, अन्य प्रकार के सहयोगी, प्रेरक, अनुकरणीय बातों की उपलब्धि न होने पर व्यक्ति उस ज्ञान, सामर्थ्य का प्रयोग नहीं कर पाता है।

यह बात निश्चित है कि **व्यक्ति अपनी ईश्वर प्रदत्त सामान्य शक्ति और साधनों से महान ज्ञान विज्ञान और शक्तियों को प्राप्त कर सकता है।** वह अगर दोनों को ठीक प्रकार सुनियोजित करे तो न केवल अपना, न परिवार का, न समाज का, न केवल राष्ट्र का अपितु सारे विश्व का बहुत भला कर सकता है। अपने मन के अंदर इस प्रकार का दृढ़–संकल्प बनाना चाहिये, बनाये रखना चाहिये और उसको बढ़ाते रहना चाहिये कि मुझे इस संसार में कुछ विशेष काम करना है। सामान्य मनुष्य की तरह खा–पीकर के, बच्चे पैदा करके या सामान्य रूप से पढ़–लिख कर सामान्य दिनचर्या से मैं अपने जीवन को नष्ट–भ्रष्ट नहीं करूंगा। मुझे कोई विशेष कार्य करना है। मैं इसके लिये पैदा हुआ हूँ। **मुझे कुछ विशेष उपलब्धियाँ अपने लिये, अपने समाज, परिवार और इस राष्ट्र के भले के लिये करनी है।** सर्वप्रथम व्यक्ति को मन में संकल्प करना चाहिये। इसके लिए व्यक्ति को ज्ञान–विज्ञान चाहिये और सामर्थ्य शक्ति–बल आदि चाहिये। इस ज्ञान–विज्ञान को, शक्ति, सामर्थ्य को व्यक्ति संग्रह करे।

अब इनके साधन क्या हैं, ये जानने योग्य बातें हैं। ज्ञान–विज्ञान की प्राप्ति के, शक्ति, सामर्थ्य की प्राप्ति के, सबसे बड़े जो महत्वपूर्ण प्रारंभिक स्त्रोत हैं, वे माता–पिता हैं। पूर्व जन्म के शुभ कर्मो के अनुसार धार्मिक, परोपकारी, बलवान, ईश्वरभक्त, नैतिक गुण सम्पन्न और प्रतिष्ठित ख्याति प्राप्त माता–पिता के घर में जन्म मिलता है।

वह माता–पिता से उस शक्ति, सामर्थ्य, ज्ञान–विज्ञान को प्राप्त कर सकता है। यह सबसे–बड़ा और पहला साधन है। शक्ति, सामर्थ्य, ज्ञान–विज्ञान को प्राप्त करने के लिये गुरू, अध्यापक भी हैं । यह दूसरा साधन है। **गुरू के माध्यम से भी व्यक्ति बहुत कुछ गुणों को प्राप्त कर सकता है।** तीसरा साधन है– संबंधी, पड़ोसी,साथी। **मित्र अगर अच्छे होते हैं तो इनके माध्यम से व्यक्ति सामर्थ्य, शक्ति और ज्ञान–विज्ञान को प्राप्त कर सकता है।** फिर आगे इस क्षेत्र में समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों का क्रम आता है। **चौथा साधन है– राजनेता और सामाजिक कार्यकर्ता।** सामाजिक क्षेत्र में, राजनीति में, शिक्षा क्षेत्र में और प्रबंध में जो अधिकारी व्यक्ति हैं, उनके माध्यम से, उनके निकट सानिध्य से, उनके प्रवचनों से, उनके साथ चर्चा से व्यक्ति ज्ञान व सामर्थ्य को प्राप्त कर सकता है। **अगला क्षेत्र आता है – स्वाध्याय का।** वेद आदि सत्य ग्रंथों का और ऋषिकृत ग्रंथों का स्वाध्याय, उनमें उल्लेखित सिद्धांतों पर विचार, मनन, चिंतन और निदिध्यासन करके व्यक्ति महान ज्ञान विज्ञान को और सामर्थ्य को प्राप्त कर सकता है। **उसके पश्चात् क्रम आता है, उपदेशकों का, आचार्यो का।** जो उपदेशक होते हैं, संन्यासी होते हैं, उनके इतिहास को, चरित्र को, कार्यशैली को जानकर के, पढ़ कर के व्यक्ति महान् ज्ञान, शक्ति, सामर्थ्य को प्राप्त कर सकता है। उसके पश्चात् क्रम आता है–ईश्वर का। **सच्चे ईश्वर की, सच्ची विधि से जो उपासना करता है, उसको बहुत कम काल के अंदर महान् ज्ञान–विज्ञान और महान् शक्ति, सामर्थ्य, बल आदि की प्राप्ति होती है।** इतना ही नहीं, उसे तो बहुत अधिक निर्भीकता, सहन–शक्ति, प्रेरणा, स्फूर्ति, पराक्रम,

धैर्य और उत्साह आदि अनेक गुणों की प्राप्ति भी होती है।

एक दूसरा क्षेत्र है– प्रकृति। परमपिता परमात्मा ने यह संसार बनाया है। इस संसार की रचना, इसकी गतिविधियां, इनमें उपलब्ध पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश नामक पंच भूतों से बने हुये विभिन्न शब्द, रूप, रस, आदि गुणों से युक्त ये जो विषय हैं, उन विषयों से भी व्यक्ति बहुत कुछ शक्ति सामर्थ्य को प्राप्त करता है। तात्पर्य है कि – **उचित मात्रा में सात्त्विक भोजन करके, वस्त्रों को पहन करके, व्यायाम करके, ठीक प्रकार से लोगों के साथ व्यवहार करके और संसार के पदार्थो को ठीक प्रकार जानकर और उनका उपयोग करके व्यक्ति अपने ज्ञान–विज्ञान और सामर्थ्य को बहुत उच्च स्तर का बना सकता है।**

एक सिद्धांत मन में यह भी होना चाहिए कि मैं भी ऋषियों के स्तर को प्राप्त कर सकता हूँ। मेरे पास सामर्थ्य है। मात्र उस ज्ञान–विज्ञान को और सामर्थ्य को प्राप्त करने के लिए मुझे तपस्या और पुरूषार्थ करना भर है। यह सिद्धांत अपने मन में बनाये रखना चाहिये कि मैं इस स्तर को प्राप्त कर सकता हूँ। चाहे अवस्था 20–22 वर्ष की है या 50–60वर्ष की है, बल्कि 65–70 वर्ष के व्यक्ति भी संकल्प करके चलें कि मुझे इस स्थिति को प्राप्त करना है तो वह इसे प्राप्त कर सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति के अंदर जन्म–जन्मांतर के अति उत्तम संस्कार विद्यमान होते हैं। जैसे कि पहले मैंने बताया था कि अब तक हमने न जाने कितनी बार वेदों को, शास्त्रों को पढ़ा है। इसलिए सबके अन्दर समस्त वैदिक ज्ञान के अध्ययन के संस्कार, तपस्या के संस्कार और बलिदान के संस्कार विद्यमान हैं। पूर्व जन्मों में न जाने कितनी बार हमने भी समाज और राष्ट्र के लिये अपने जीवन की आहुति दी है। प्राणों की बाजी लगाकर के जीवन की परवाह नहीं करते हुये युद्ध हमने किये हैं। हमारे अंदर त्याग, तपस्या, सेवा और समाधि के यानी उत्तम संस्कार विद्यमान हैं। **अपने संस्कारों को व्यक्ति केवल जगा ले तो थोड़े से काल के अंदर वह महान् बन जाता**

है। चाहे वह कितना ही निम्न स्तर का व्यक्ति क्यों न हो। आध्यात्मिक क्षेत्र में भी ये ही चीज लागू होती हैं।

सबसे पहले संकल्प करना चाहिये कि मुझे इस जीवन के अंदर असामान्य काम करना है। उदाहरण के लिये, यदि व्यक्ति प्रचार करने का लक्ष्य बनाता है तो संकल्प करे कि मुझे तो ऐसे अवसर, ऐसे साधन प्राप्त करने का प्रयास करना है कि मैं वेदों के और ऋषियों के सिद्धांतों को, मंतव्यों को, परिभाषाओं को, जीवन शैली को, करोड़ों नहीं बल्कि अरबों व्यक्तियों तक पहुँचाऊंगा। ऐसा मैं अपने आप को बनाउंगा। इसी प्रकार अध्यापन के विषय में संकल्प करे कि न तो मुझे 15 या 50 या 500 या 5000 व्यक्तियों को पढ़ाना है अपितु, मुझे तो लाखों व्यक्तियों तक इन ऋषियों के ग्रंथों को, उनके सिद्धांतों को पढ़ाना है। इसी प्रकार प्रकाशन आदि **जिस किसी क्षेत्र में काम कर रहे हैं, वहां अंतिम स्थिति तक पहुंचने का प्रयास करना चाहिए।** इस विषय में संतोष नहीं करना चाहिये। व्यक्ति जहाँ संतोष कर लेता है, वहाँ शक्ति–सामर्थ्य, ज्ञान–विज्ञान जो कि और अधिक उभर सकता है, वो समाप्त हो जाता है।

उपनिषद में आया है कि ये जीवात्मा संकल्पमय है। यह जैसा संकल्प करता है, जिस प्रकार का पुरूषार्थ करता है, उसी प्रकार का यह बन जाता है। पहले ये एक होता है, आगे चलकर के दो हो जाता है, फिर 10 फिर 100 और फिर 1000 बन जाता है। ऐसा करते–करते इसकी संख्या करोड़ों और अनंतों में बन जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि, व्यक्ति में इतना सामर्थ्य है कि यदि वह चाहे तो समस्त विश्व में ईश्वरप्रणीत सिद्धांतों को दर्शा सकता है, उनका परिज्ञान करा सकता है।

लक्ष्य बहुत ऊंचा बनायें:– कम से कम बड़ा लक्ष्य तो ऐसा बनाना ही चाहिए। ये आवश्यक नहीं कि पूरा हो ही जायेगा। लक्ष्य हमको बनाना चाहिये, संकल्प हमको करना चाहिये। अपने सामर्थ्य, ज्ञान–विज्ञान को जगाना चाहिये। व्यक्ति के मन में ये सिद्धांत रहना चाहिये कि मुझे कुछ विशेष

करना है और ईश्वर को, वेद को, वैदिक सिद्धांतों को संपूर्ण विश्व तक पहुंचाना है। इतना बड़ा लक्ष्य होगा तो व्यक्ति कितना पुरूषार्थ करेगा, कितना गंभीर रहेगा, अपने समय का कितना सदुपयोग करेगा, कितना सहनशील होगा, ये हम कल्पना कर सकते हैं। हमें केवल मुक्ति नहीं करनी।

अब अनेक बार देखने में आता है, कुछ व्यक्ति जब पूछते हैं कि आपका उद्देश्य क्या है, तो वे कहते हैं कि हमारा उद्देश्य धन कमाना, डॉक्टर, इंजीनियर बनना है। हम इसको बहुत अच्छा नहीं मानते। यह अधूरा उद्देश्य है। ठीक ऐसे ही जो व्यक्ति ये कहता है कि मेरा उद्देश्य मुक्ति को यानी मोक्ष को प्राप्त करना है तो ये भी ठीक उत्तर नहीं है। ये भी अधूरा उत्तर है। पूरा उत्तर है– मुझे मुक्ति प्राप्त करना है और दूसरों को भी मुक्ति प्राप्त करवाना है। ये लक्ष्य होना चाहिये। इससे व्यक्ति में स्वार्थ की प्रवृत्ति नहीं आती। अन्यथा लोग कहते हैं कि आप अपना स्वार्थ देख रहे हैं। इसलिये वाक्य ऐसा बनाना चाहिये कि – **मुझे संपूर्ण दुःखों से छुटकारा पाना है और सुख–आनंद से युक्त होना है और साथ में दूसरों को भी भय, दुःखों और चिंताओं से हटाना है और उनको भी मुक्त कराना है।** यह ठीक उत्तर है, इसलिए ऐसा ही उत्तर देना चाहिये। इस प्रकार का उत्तर देने में दोष नहीं आता है। तब हमारी भावना रहती है कि हमें अपने लिये भी करना है और समाज, राष्ट्र और विश्व के लिये भी कुछ करना है।

अब आप इस सिद्धांत को निदिध्यासन का विषय बनायें। दिन में आप आत्म–निरीक्षण करके देखें कि हमारे अंदर जो संकुचित भावना है, असहनशक्ति है, आलस्य है, उग्रता है, प्रमाद (लापरवाही) है, या रजो–तमोगुण की प्रवृत्तियाँ हैं या अन्य प्रकार की अनादर्श स्थितियां हैं, ये क्यों होती हैं? इसका कारण है कि हमारा उद्देश्य ऊँचा नहीं है। यदि मन के अंदर आप कभी कल्पना करके चलें कि मैं योगी हूँ, मैं संन्यासी हूँ, तो स्वयं ही आपके मन में अच्छे विचार उत्पन्न हो जायेंगे। जिस व्यक्ति का लक्ष्य बहुत ऊंचा होता है, उसको किसी को कुछ बोलने की जरूरत नहीं पड़ती। बोलने वाले बोलते

रहें, वह उस पर ध्यान ही नहीं देता है। वह अपने आप में अपना कार्य किये जाता है। सार यही है कि– व्यक्ति को अपना लक्ष्य हमेशा ऊंचा बनाना चाहिये। उसे अपने ज्ञान–विज्ञान और सामर्थ्य को बढ़ाकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति की ओर तेजी से अग्रसर होना चाहिये। आध्यात्मिक व्यक्ति के अन्दर बहुत अधिक सामर्थ्य निहित है। इसलिए उस शक्ति को, ज्ञान–विज्ञान को उभारना चाहिये। मेरे जीवन का लक्ष्य बहुत ऊंचा है, मैं संपूर्ण संसार को आगे बढ़ाऊंगा, ये लक्ष्य बनाकर अगर व्यक्ति चलता है तो उसकी विचारधारा में बहुत बड़ा अंतर आ जाता है।

भूमिका– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लक्ष्य का साधक होने से जरूरी है कि यह शरीर निरोगी और बलवान रहे, अतः आचार्यवर कहते हैं:–

(24) शरीर को समर्थ बनायें।

शरीर को सशक्त और बलवान बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि व्यक्ति शरीर से काम करे। 3–4 घंटे का काम तो कुछ भी नहीं है। जो विद्यार्थी समझते हैं कि मैं 4 घंटे काम कर रहा हूँ, वह कुछ भी नहीं है। गुरूकलों में हम 8–8 रोटी खाते थे। पांच–पांच किलो घी एक महीने के अन्दर हमने खाया। इतना कौन खाता है। प्रायः कोई खाता ही नहीं। प्रायः सभी ब्रहम्चारी और विद्यार्थी ध्यान में बैठे रहते हैं। कोई लिखता है, कोई पढ़ता है। लेकिन खेतों में हल फावड़े कौन चलाता है? कोई नहीं दिखता। रोज 500 दण्ड कौन मारता है? रोजाना 10 चम्मच घी खाने वाला कौन है? कोई नहीं दिखता। **बिना कठोर शारीरिक श्रम व पौष्टिक भोजन के शरीर समर्थ नहीं बन सकता।** शरीर बलवान नहीं तो मन भी बलवान नहीं होगा। इसलिए असमर्थ शरीर सफलता के मार्ग में बाधक होता है।

भूमिका– मन के विचारों को रोक देना 'योग' है। शीर्षासन, शलभासन आदि आसन करना योगाभ्यास का अंग नहीं है। तो क्या है योगाभ्यास का अंग? आचार्यवर बताते हैं :–

(25) योगाभ्यास क्या है?

प्रयोग यह करने योग्य है कि अनुकूल प्रतिकूल स्थितियों में वाणी को तो छोड़िये, मन में भी हिंसा, झूठ, चोरी की भावना आदि वितर्क न लाएं। इसका नाम योगाभ्यास है। इसे करके देखें आप। आप स्थिरता और सुख से बैठकर आसन लगाते हैं, प्राणायाम करते हैं, ओम का, गायत्री मंत्र का जप करते हैं, वेद मंत्रों को बोलते हैं, ईश्वर का चिंतन करते हैं, यह भी एक योगाभ्यास है। व्यवहार की घटनाओं से हम कितने प्रभावित होते हैं, उनको कितना सहन करते हैं, यह तपस्या है। यह योगाभ्यास का एक अंग है। इस अभ्यास को करने में जो व्यक्ति सफल होता है, उसको स्पष्ट प्रतीति होगी कि मैंने आज कुछ अच्छा प्राप्त कर लिया है। मैं पहले से ज्यादा परिपक्व हुआ हूँ। जैसे व्यक्ति दण्ड–बैठक लगाता है और दूध–घी, खाता–पीता है तो उसको लगता है कि अब मेरे बाहू बढ़ गये हैं और मेरा वजन बढ़ गया है, चेहरे पर लावण्य आ गया है, शरीर की शक्ति बढ़ गई है। इस प्रकार से वह अपने भौतिक विकास की स्पष्ट अनुभूति करता है। ऐसे ही प्रतिकूलताओं को व्यक्ति सहन कर लेता है। केवल शरीर से प्रतिकार की भावना नहीं, वाणी से प्रतिकार की भावना नहीं, बल्कि मन में भी किसी प्रकार की कोई प्रतिकार या प्रतिक्रिया उत्पन्न नहीं होने देता है। ऐसी स्थिति लाने पर व्यक्ति को ऐसा अनुभव होता है कि जैसे मैंने कुछ विशेष प्राप्त कर लिया है। जैसे लौकिक व्यक्ति को लाख रुपया मिल जाता है तो उसे वह उपलब्धि मानता है। ऐसे ही आध्यात्मिक आदमी जब अत्यंत प्रतिकूल वस्तुओं और स्थितियों को प्रसन्नता से सहन कर लेता है तो उसको लगता है कि आज मुझे बहुत कुछ मिल गया है। कितनी शक्ति मेरे पास में आ गई है, कितना बल मेरे पास में आ गया है, वह ऐसी अनुभूति करता है।

ये प्रतिकूल चीजें पदे–पदे, प्रत्येक दिन व्यक्ति के सामने आती हैं। आपके सामने प्रत्येक दिन आयेंगी, घंटे–घंटे में आ सकती हैं। दूसरा व्यक्ति हमारे विषय में कुछ भी विचारने में, बोलने में और करने में स्वतंत्र है। जहां प्रतिकूलता आती है, वहां मन में किन्चित मात्र भी क्षोभ या प्रतिकार की भावना, प्रतिशोध की भावना उठाने की बात तो दूर रही, बल्कि विरोधी व्यक्ति के प्रति

मन में अत्यंत दया होनी चाहिए, और उसके उद्धार, उसकी उन्नति, उसके विकास के लिए मन में ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए। ऐसी स्थिति बनाकर चलने वाला ही व्यक्ति उच्च स्थिति को प्राप्त कर सुख और शांति प्राप्त कर सकता है।

अभी तक मैंने आपको बताया कि आध्यात्मिक व्यक्ति के सामने जब प्रतिकूलताएं, कष्ट, विरोध, अभाव, बाधाएं, कठिनाइयां आदि उत्पन्न होते हैं तो वह कभी भी अशांत नहीं होता, दुःखी नहीं होता, उसके मन में प्रतिशोध की भावना नहीं आती, विरोधियों के प्रति वैमनस्य नहीं होता, वह उलाहना नहीं देता आदि–आदि। यह उसकी उच्च मानसिक स्थिति का प्रतीक है।

भूमिका– रातों रात कुछ नहीं होता, इस बात को व्यक्ति मानता नहीं है, अतः धैर्य खो बैठता है, इसलिए आचार्यवर कहते हैं:–

(26) काम में लम्बा काल लगायें।

चारों तरफ क्या स्थिति है, यह हम देख ही रहे हैं। मैं जल्दी पढ़ लूं, जल्दी व्याकरणाचार्य बन जाऊं, जल्दी आचार्य बन जाऊं, प्रायः सब यही सोचते हैं। लोग मुझे कहेंगे–तुम यहां पर 6 वर्ष से पड़े हो। कुछ भी नहीं हुआ अभी तक। किसी बह्मचारी ने दो वर्ष, ढाई वर्ष में दर्शन पढ़ लिये और किसी ने 5 वर्ष लगाये और कोई ऐसा भी था जिसने 10 वर्ष लगाये। काल मुख्य कारक (फैक्टर) नहीं है। **किसी व्यक्ति के प्रबल संस्कार हैं, वह पुरूषार्थ करता है, वह तपस्या करता है तो वह व्यक्ति कम काल में भी गति और सफलता को प्राप्त करता है।** उसे स्थिरता की प्राप्ति हो जाती है। कोई व्यक्ति ऐसा भी होगा कि 10 वर्ष पढ़े तो भी गिरता है। यह व्यक्ति की अपनी योग्यता पर निर्भर होता है।

प्रायः देखने में आता है कि व्यक्ति स्वयं जब किसी कार्य को समझता नहीं है, स्वयं की इतनी योग्यता नहीं है, इतना अनुभव नहीं है, फिर भी वह अपने अनुभव से दूसरे की बात को आंकता है। वह अपने अनुभव को प्रमुखता देता है। इसलिए उसके अपने गुरू, आचार्य, अध्यापक, संन्यासी, योगी को,

अपनी बुद्धि से आंकता है कि ये गलत कह रहे हैं। यह मानवीय प्रवृत्ति है। इस मार्ग पर चलने के लिए आवश्यक साधन क्या है, क्या बाधक हैं, क्या शैली है, क्या आवश्यक चीजें हैं, कैसा व्यवहार होना चाहिए, किस प्रकार की दिनचर्या, किसकी प्राथमिकता, किसकी गौणता रखी जाए, बहुत कम व्यक्तियों को इसका ज्ञान होता है। जितना स्वामी सत्यपति जी महाराज को अनुभव है, उतना हमें नहीं है, और जितना हमको अनुभव है, उतना आपको नहीं है। लेकिन प्रायः देखने में आता है कि **– व्यक्ति अपनी बुद्धि को प्रमुख मानता है।** गुरू, आचार्य, अध्यापक कहते हैं कि इस काम को करो और इसको न करो मगर वह कहता है – नहीं, यह गलत है। अध्यापक, गुरू, आचार्य कहते हैं कि इस कार्य को गौण मानो, इस कार्य को मुख्य मानो। इसके विपरीत वह कहता– नहीं, यह मुख्य कार्य है। जो व्यक्ति 50 साल तक, 55 साल तक, 60 साल तक इस मार्ग पर चला है, उसका अपना अनुभव है। उस मार्ग में चलने–चलाने का, प्रेरणा देने का उसका अनुभव अधिक है और जो दो वर्ष से आया है उसका अनुभव अपेक्षाकृत कम है। लेकिन नहीं, व्यक्ति की बुद्धि में यह बात नहीं आती है।

हमने तो यह निष्कर्ष निकाला कि – अनुशासन और समर्पण बहुत–बड़ी चीज है। समर्पण में, अनुशासन में कोई भय–चिन्ता नहीं है, कोई बाधा नहीं है, कोई संशय नहीं है। निर्भीक होकर के व्यक्ति कार्य करता है। जो कहा गया और जो सुनाया गया, जो विधि–विधान बताये गये, उसी के अनुसार काम करके, व्यक्ति उन्नति कर सकता है। कई ऐसे गृहस्थी मिलेंगे जिनका व्याकरण के आचार्यों से, दर्शनाचार्यों से, सन्यासियों से बहुत ऊंचा व्यवहार है। उनका इतना पवित्र यम–नियम का जीवन है, इतनी आदर्श दिनचर्या है, इतना ईश्वर के प्रति समर्पण है, इतनी निष्काम भावना है, इतनी सेवा की भावना है, जितनी तो संन्यासियों में भी नहीं मिलेगी। इसका मतलब यह नहीं कि संन्यास नहीं लेना चाहिए, व्याकरण नहीं पढ़ना चाहिए। पढ़ने–पढ़ाने, सुनने–सुनाने का परिणाम निकलना चाहिए – व्यवहार की उत्तमता। **पढ**

कर, लिख कर, योग्य बन कर, व्यक्ति का व्यवहार, अगर अंगूठा छाप आदमी से ज्यादा निकृष्ट हो जाए तो क्या लाभ रहा? कोई लाभ नहीं। बहुत लंबे काल तक व्यक्ति को इस मार्ग पर दृढ़तापूर्वक चलना पड़ता है।

आपका निर्माण करना है। निर्माण किसका होता है। जब लोहे का सरिया बनाना होता है या कोई पात्र बनाना होता है तो क्या करते हैं। गर्म करके उसकी पिटाई करते हैं। घड़ा बनाने के लिए मिट्टी का लोंदा लेकर के उसको कूटते हैं। फिर घुमाते हैं। मैं आपको सिखाना चाहता हूँ कि **आध्यात्म के साथ में व्यक्ति को सेवाभावी भी होना चाहिए।** दायित्वों को संभालने वाला होना चाहिए। दायित्वों के विषय में बताता हूँ कि लिये गये और दिये गये दायित्वों को जो आपने स्वीकार किया है, उसका भी अगर आप ठीक प्रकार से निर्वहन नहीं करते हैं तो स्वतः जिन कर्त्तव्यों को करना आपक कर्त्तव्य है, उनको क्या करेंगे आप। यह निर्माण का काल, तपस्या का काल है। तपस्या के काल के अंदर व्यक्ति को लेने की इच्छा नहीं करनी चाहिए। यह मई का महीना है। आप 15 दिन के लिए ऐसे गुरूकुल में जाकर के रहें जहां गर्मी अधिक पड़ती है। इतनी भयंकर गर्मी, मच्छर, धूल, आँधियां, कीचड़, कांटे, मिट्टी,लू अनुकूल–प्रतिकूल व्यवहार का सामना करके देखें तो।

हम से स्वामी जी महाराज प्रश्न पूछते थे। मैं तो कई बार नहीं पूछता हूँ क्योंकि व्यक्ति का स्तर जब देखते हैं तो इच्छा नहीं होती। कई बातें बताने की मुझे इच्छा नहीं होती, क्योंकि जब अन्दर पात्रता ही नहीं है तो उनको क्या बतायें। एक सामान्य स्तर में आकर के मूलभूत चीजों को जो व्यक्ति पकड़ नहीं पा रहा है तो उसे विशेष बातें क्या बतायें। उदाहरण के लिए पूछ रहा हूँ कि क्या आप प्रवचन, अध्यापन या और कोई सेवा कार्य करेंगे तो उसके बदले में धन आदि लेंगे?

मैने सबसे पहले कार्यक्रम आर्डिनेंस फैक्ट्री मुरादनगर में रखा। बड़े–बड़े कर्नल और लेफ्टिनेंट सीखने आये। मैंने प्रवचन दिये। मैंने ओम का

जप, गायत्री का जप, ध्यान, प्राणायाम, ईश्वर प्रणिधान बनाना सिखाया, जो उनको अच्छा लगा। उन्होंने मुझे उस समय में आज से 25 वर्ष पहले 15 सौ रुपये दिये। ये 15 सौ रूपये आज के 15 हजार के बराबर होते हैं। मैंने कहा–5 दिन में 15 सौ रुपये मिल गये और पहले तो 5–5 रुपये के लिए हम तरसते थे। 70 रूपये में महीना भर काम चलाते थे। कपड़े धोने का एक साबुन 6 या 8 महीने चलता था। मैंने इसी प्रकार का शिविर का कार्यक्रम बड़ोदरा में बनाया। वहाँ मुझे लगभग 2 हजार रुपये दिये गये। एक महीने से कम समय में मेरे पास 5 हजार रुपये हो गये। रुपये तो बड़े इकट्ठे हो गये मगर समस्या यह आ गई कि इन्हें कहाँ रखें। मैं संन्यास आश्रम गाजियाबाद में रहता था। मैंने कहा–जी रुपये कुछ इकट्ठे हो गये हैं, बैंक में खाता खोलो। मेरे मन में आ गया, यह तो परिग्रह हो गया, अशांति पैदा हो गयी। मैंने एक–दो दिन में सारे रुपये बाँट दिये। न माँगा, न इकट्ठे किये। आज भी स्थिति यह ही है। हाँ इतनी बात जरूर है कि लोगों से लिया नहीं है इसलिए पाकेट में आज हमारे नाम का पैसा जमा है। मैं समझता हूँ , जब मांगेंगे तब रुपये इकट्ठे हो जाएंगे। रुपये की कमी नहीं हैं। याद रखो कि रुपये न होने के कारण ही व्यक्ति आध्यात्मिक उन्नति करता है। इस प्रकार वस्त्र, पुस्तक, वाहन आदि के विषय में ऐसी स्थिति आती है। मैं आपको मुख्य बात बता रहा था कि व्यक्ति को अपने जीवन के लक्ष्य पर ठीक प्रकार समझकर के चलते रहना चाहिए। मुख्य आवश्यकता है कि इस मार्ग के प्रति अटूट श्रद्धा होनी चाहिए,श्रद्धा कभी भी न टूटे। सहन शक्ति बढ़ाईये अपनी। धैर्य बढ़ाईये।

भूमिका–जीवन का परम लक्ष्य है–परमात्मा का साक्षात्कार। इस लक्ष्य को ही अपना जीवन कार्य समझो, हर समय उसी का चिन्तन करो, उसी के सहारे जीवित रहो ताकि वह लक्ष्य दृढ़ बन जाये। अतः आचार्यवर कहते हैं कि:–

(27) मोक्ष प्राप्ति के लक्ष्य को दृढ़ बनाओ।

ऋषियों ने कहा है– आध्यात्म से संबंधित ज्ञान को परिपक्व बनाना

चाहिए। बहुत सूक्ष्म विषयों की बात तो मैं करता ही नहीं, क्योंकि उस विषय में निर्णय करने में तो वर्षो नहीं, कई जन्म लग जाते हैं। हमारा मनुष्य जन्म लेना इस बात का प्रतीक है कि हमने अब तक मोक्ष की प्राप्ति का लक्ष्य नहीं बनाया है। ईश्वर–साक्षात्कार करने का लक्ष्य बनाया ही नहीं है। समाधि प्राप्ति का लक्ष्य हमने निश्चय किया ही नहीं है। यही कारण है कि हम अभी तक मनुष्य जन्म प्राप्त कर रहे हैं। यदि ईश्वर की प्राप्ति का, मोक्ष की प्राप्ति का, ईश्वरीय साक्षात्कार का, विवेक–वैराग्य प्राप्ति का लक्ष्य बना लेते और वो लक्ष्य परिपक्व, दृढ़ होता तो हम आज इस मनुष्य जन्म में नहीं आते। हम अब तक मुक्त हो गए होते। ईश्वर के प्रति समर्पित श्रद्धांवित होकर के और उसी को मुख्य लक्ष्य बनाकर चलने वाले व्यक्ति का जीवन, व्यवहार और विचार यह दर्शा देता है कि इस व्यक्ति का लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति का बना हुआ है, विवेक वैराग्य को प्राप्त करना बना हुआ है, यम–नियम के पूर्ण श्रद्धा–निष्ठा के साथ पालन करने का बना हुआ है, इसीलिए वह इस प्रकार का व्यवहार कर रहा है। उसका व्यवहार अत्यंत विलक्षण (अलग) दिखाई देगा। वैराग्यवान व्यक्तियों में भी, आचार्यो में भी, तपस्वियों में भी जिस व्यक्ति का पूर्ण निष्ठा से इस प्रकार का लक्ष्य होता है, उसका जीवन, व्यवहार और उसकी क्रियाएं बिल्कुल विलक्षण दिखाई देंगी। ऐसा नहीं है कि मोक्ष प्राप्ति हमारा लक्ष्य नहीं है। यह हमारा लक्ष्य है, मगर वह परिपक्व नहीं है। यह लक्ष्य हर समय मन–मस्तिष्क के अंदर नहीं रहता है। यह लक्ष्य मन में एक घंटे, 2 घंटे, 4 घंटे, 5 घंटे, 6 घंटे, 7 घंटे रहता है। बहुत अधिक खींचकर रखे तो 10 घंटे रखते होंगे। हम 18 के 18 घंटे मस्तिष्क में यह बनाए रखें कि मुझे योगी बनना है, मुझे संन्यासी की स्थिति को प्राप्त करना है, मुझे समाधि लगाना है, मुझे ईश्वर को प्राप्त करना है, मुझे विवेक ख्याति प्राप्त करनी है।

इस प्रकार का पूर्ण दृढ़ लक्ष्य जिस व्यक्ति के मन–मस्तिष्क में बना रहता है, उसका व्यवहार निश्चित रूप से विलक्षण होता है। आज के परिवेश में उसको लोग पागल कहेंगे, स्वार्थी भी कहेंगे, मूर्ख भी कहेंगे, न जाने

कौन–कौन से अलंकारों से युक्त कर देंगे। जब इस प्रकार के ऊंचे स्तर का लक्ष्य बनाकर के व्यक्ति उस पर आरूढ़ होता है तो समस्त लौकिक कार्य उसके रुक जाते हैं। वह पढ़ना भी बंद कर देता है। वह देखना भी बंद कर सकता है, मिलना भी बंद कर सकता है, आंखे खोलना बंद कर सकता है, किसी से सुनना बंद कर सकता है और अपने आप को बाहर निकालना बंद कर सकता है। व्यक्ति एक कोने के अंदर बैठना पसंद करता है। कुछ घंटे के लिए,कुछ समय के लिए, कुछ दिन के लिए हमें भी इस प्रकार की अनुभूति होती है। यह विलक्षण स्थिति है, इस ऊंची बात को छोड़िए। सामान्य बात बता रहा हूँ कि दिनचर्या के विषय में, भोजन के विषय में, परिवेश के विषय में, व्यवहार के विषय में, सिद्धांतों के विषय में, आने–जाने के विषय में, लेन–देन के विषय में, परोपकार के विषय में, ज्ञान के विषय में, धैर्य, सहन–शक्ति, दया और क्षमा के विषय में अथवा तो हमने इनकी परिभाषाओं को ठीक से जाना ही नहीं है अथवा इनके विषय में हमारा मिथ्या या संशयात्मक ज्ञान है। यही कारण है कि हम व्यक्तियों को क्षमा नहीं कर पाते, प्रतिकूलताओं को सहन नहीं कर पाते। चाहे हम 80 प्रतिशत तक व्यक्तियों के कुव्यवहारों को, प्रतिकूलताओं को, आरोपों को जो हिंसा आदि वितर्को को उत्पन्न करने वाले हैं, को सहन कर लेते है, लेकिन 20 प्रतिशत जिन बातों को हम सहन नहीं कर पा रहे हैं, उतना ही हमारा दया के विषय में, सहन–शक्ति के विषय में, क्षमा के विषय में अज्ञान बना हुआ है। धैर्य के विषय में ऐसा ही है, सेवा–परोपकार के विषय में ऐसा ही है, सकामता के विषय में भी ऐसा ही है।

भूमिका–सिद्धांत पथ प्रदर्शक है, इसलिए सिद्धांत विहीन मनुष्य, माझी विहीन जहाज जैसा है। सिद्धांतों के अनुसार चलना सफलता दिलाता है। सिद्धांतों को छोड़ दिया तो मान लो कि दुःख तो ले चुके, इसलिए आचार्यवर कहते हैं:–

(28) सिद्धान्तों को कभी न छोड़ें।

जिस विषय में परिपक्व ज्ञान होता है, व्यक्ति उन सिद्धांतों को अपने

मन मस्तिष्क में बनाये रखता है। उनका कभी भी आलस्य–प्रमाद के कारण परित्याग नहीं करता है। लोक के कारण, औपचारिकता के कारण, कभी वह सिद्धांतों को नहीं छोड़ता है। वह ईश्वर को, वेद को, ऋषियों को, महापुरूषों को और सिद्धांतों को प्रधानता देता है। वह लौकिक व्यक्तियों को, लौकिक क्रिया–कलापों को, लौकिक मिथ्या–मान्यताओं को, काल्पनिक मान्यताओं को कोई स्थान नहीं देता है। वह चाहता है कि ईश्वर नाराज न हो, दुनियां भले नाराज हो जाए। उसके दिमाग में रहता है कि, मैं ऋषियों के सिद्धांतों को,उनके आदर्शों को नहीं तोडूंगा, चाहे मुझे भूखा ही क्यों न मरना पड़े, चाहे मुझे अपमानित ही क्यों न होना पड़े, चाहे मेरा सब कुछ ही क्यों न लुट जाए। चाहे चक्रवर्ती साम्राज्य भी क्यों न मिलता हो, तो भी ऐसा व्यक्ति अधर्म–आचरण नहीं करता अर्थात् असत्य को, द्वेष को, चोरी को, असंयम को नहीं अपनाता है। इतने ऊंचे स्तर से चलने वाला व्यक्ति इस आध्यात्मिक मार्ग में सरलता से गतिपूर्वक चल सकता है अन्यथा जितना–जितना हमने जिस–जिस विषय में जाना है, उतना तो हम कर ही रहें हैं।

मनुष्य जीवन का लक्ष्य सत्य–असत्य को जानना है। सत्य क्या है, असत्य क्या है। इसे जानना चाहिए। सत्य–असत्य को जो व्यक्ति जान लेता है और जानकर के दोनों को पृथक कर के सत्य को स्वीकार कर लेता है, असत्य को छोड़ देता है और सर्वथा छोड़े रखता है और सत्य को पकड़े रखता है। ऐसा व्यक्ति मार्ग में सफल हो जाता है। यहां सत्य एक उपलक्षण (उदाहरण) मात्र है। इसी प्रकार हिंसा–अहिंसा के विषय में, न्याय–अन्याय के विषय में,धर्म–अधर्म के विषय में, कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य के विषय में और लाभकारी–हानिकारक के विषय में लगा लेना चाहिए। यह उचित है, यह अनुचित है, यह ग्राह्य है, यह हेय है, व्यक्ति इस बात का निर्णय करके उस पर विश्वास रखता है। व्रत, संकल्प, तपस्या, अभ्यास के साथ में ग्राह्य को पकड़ लेता है और हेय को बिल्कुल फेंक देता है। हेय को कभी भी स्वीकार नहीं करता है, चाहे मौत भी क्यों न आ जाये। यद्यपि यह बहुत गंभीर विषय

है, लेकिन जितने ऊंचे स्तर से इसे ग्रहण करते हैं, उतने ऊंचे स्तर से व्यक्ति चल सकता है। हो सकता है कि बहुत ऊंचे स्तरवाला व्यक्ति 99 प्रतिशत आदर्शों को लेकर चले। वह खान–पान के विषय में, विचार के विषय में, लेन–देन के विषय में, सुविधाओं के विषय में कहीं–कहीं गिर सकता है। लेकिन सामान्य क्रिया–कलापों के अंदर वह अपने आदर्शों को नहीं छोड़ता है। कितने ही कष्ट हों, कितना ही दुख हो, कितनी हानि हो, कितना अपमान हो, कितना ही तिरस्कार हो, कितना ही दण्ड दिया जाए, कितना दुःख क्यों न पैदा हो, वह उन आदर्शों को छोड़ता ही नहीं है। वह समझता है कि मेरी नींव पक्की हो रही है। जब तक मैं इन चीजों को दृढ़ रूप में नहीं अपनाऊंगा, मैं इस चीज को लेकर चल नहीं सकूंगा। आपने अनुभव किया होगा कि जिन चीजों को हम जाग्रत अवस्था में हानिकारक मानते हैं, लेकिन उन विषयों में हमारी परिपक्व स्थिति नहीं बनी है तो स्वप्न अवस्था के अंदर हम उन कार्यों को, अनिष्ट कार्यों को कर लेते हैं। उस स्वप्न अवस्था के अंदर वो अनुचित काम कर लेते हैं, जो जाग्रत काल में नहीं करते हैं। यह इस बात का प्रतीक है कि हमारे जो संस्कार हैं, वह दृढ़ नहीं हैं, परिपक्व नहीं हैं। हम इतना परिपक्व हो जाएं कि स्वप्न में भी या अत्यधिक प्रलोभन में भी आदर्शों को पकड़े रखें। जाग्रत अवस्था में यह स्थिति आ जाये कि या तो अनिष्ट कार्य करो अथवा तलवार से आपकी गर्दन काट दी जाएगी तो वे गर्दन कटवाना स्वीकार करेंगे मगर अनिष्ट कार्य नहीं करेंगे। इसको कहते हैं– परिपक्वता। गर्दन कटने की स्थिति नहीं आती है, अधिक कष्ट नहीं आता है, अधिक अपमान नहीं हो रहा है, बहुत अधिक दुःख नहीं है, बहुत अधिक लज्जित नहीं हो रहा है, फिर भी व्यक्ति छोटी–छोटी सुविधाओं के लिए, छोटे–छोटे प्रलोभनों में आकर के, दबाव में आकर के सामाजिक संकुचित प्रवृत्तियों को पालन करने के लिये आदर्शों को छोड़ देता है। ऐसी परम्परा बन गई है।

दुनियां के अन्दर झूठ आत्मसात हो गया है। आज अधिकांश व्यक्ति के मन में बैठ गया है कि बिना झूठ के, बिना हिंसा के, बिना चोरी के, बिना

इन्द्रियों के लोलुप हुये कोई भी व्यक्ति सुखी और शांत नहीं हो सकता। बिना इसके वह मर जायेगा।

ऐसे ही आध्यात्मिक क्षेत्र में भी एक सिद्धांत सा बन गया है कि इतना तो चलता है। इतना हम नहीं कर सकते। इतना संभव नहीं है। इससे अधिक करना संभव नहीं है। इतनी सामर्थ्य नहीं है। इतना ज्ञान–विज्ञान नहीं है। ये नहीं है, वो नहीं है, ऐसा कहकर व्यक्ति पचासों बहाने मारता है। व्यक्ति को शत्–प्रतिशत उन आदर्शों के प्रति आरूढ़ होकर के चलना चाहिए। किंचित मात्र भी आदर्श स्थिति में परिवर्तन और परिशोधन नहीं हो। इस आध्यात्मिक मार्ग में तीव्र गति से चलने वाला व्यक्ति तीव्र गति से उपलब्धियों को प्राप्त करता है। इस मार्ग में उसको जो आनन्द आता है, जो संतोष मिलता है, वह अलौकिक होता है। हम इस विषय पर सतत् विचार करते रहें, अपने जीवन में देखते रहें कि क्या मैंने इस वस्तु के विषय में सत्य को जान लिया है और उसको ग्रहण कर लिया है और असत्य को जान कर उसे छोड़ दिया है। आज भी अनेक विचार, सिद्धांत, नियम, क्रियाएं, मान्यतायें और व्यवहार हमारा ऐसा मिलेगा जिसमें सूक्ष्मता से आत्म–निरीक्षण करने से यह प्रतीति होगी कि हमने असत्य को स्वीकार कर रखा है और सत्य को छोड़ रखा है, अनादर्श को पकड़ रखा है और आदर्श को छोड़ रखा है। बुद्धिमान व्यक्ति इस बात का पता लगा लेगा कि मेरी आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्नति न होने के कारण क्या हैं। उसको इसका पता लग जायेगा, उसे किसी से पूछने की जरूरत नहीं है। हमारे पास लोग आते हैं, वे पूछते हैं कि कैसे उन्नति करें, कैसे आगे बढ़ें। हम उनको बताते हैं कि ये करो वो करो, लेकिन कोई इस प्रकार का बुद्धिमान व्यक्ति आता है, उसको यह भी बताते हैं कि **यदि एकांत स्थान में जाकर आंखे बंद करके बैठेंगे तो आपको स्वयं प्रतीति हो जायेगी कि मेरी अवनति में बाधा क्या है।**

प्रायः आदमी छदमी बनकर के चलता है। छदमी कहते हैं– जो मुखौटा लगाकर के चलने वाला है। वह बाहर अपने आप को किसी और रूप

में प्रदर्शित करता है, मन में कुछ और प्रकार का विचार करता है और वाणी से कुछ और प्रकार का बोलता है। हमारा व्यवहार बिल्कुल छोटे बच्चों के समान होता है। छोटा बच्चा जिसके हाथ में चाकू है या दियासलाई है, या हानिकारक वस्तु है जो कि नष्ट हो जायेगी, टूट–फूट जायेगी तो हम उसे रोकते हैं तो वह क्या करता है। बच्चे को पता है कि मेरे माता–पिता ने देख लिया है इसलिए वह पीछे मुड़ जायेगा और दीवार की ओर मुँह कर लेगा, और ये सोचेगा कि मेरी माँ नहीं देख रही है। जब हम यह देखते हैं तब हम उस पर हँसते हैं कि देखो, मैंने देख लिया है कि इसके हाथ में गहना, आभूषण या कोई हानिकारक वस्तु है, फिर भी ये ऐसा कर रहा है, जैसे की है नहीं। हम उसके भोलेपन पर हंसते हैं। ऐसे ही उस साधक पर हंसते हैं कि इसने सिर मुड़ा लिया है, लंगोट पहन ली हैं, घर–बार छोड़ दिया है, यज्ञ भी करता है,ध्यान भी करता है, दुनिया में ऋषि–महर्षि योगी कहलाता है और देखो कैसा व्यवहार करता है। दुनिया से हम छुपा लेंगे। लेकिन वह नहीं जानता कि ईश्वर बैठा देख रहा है। ऐसी भूलें, प्रवृत्तियां, ऐसी मान्यता, ऐसे व्यवहार हमारे जीवन में बहुत मिलेंगे जो हम अब तक करते आये हैं। हम इन विषयों में सावधान रहेंगे तो भी आध्यात्मिक क्षेत्र में बहुत अधिक गति से प्रगति कर सकते हैं। इसको और रूप में कह सकते हैं कि जैसे जगाया जाता है सोने वालों को और जो आँखे खोलकर सो रहा है, उसको क्या जगायें। **सुनते आए हैं, पढ़ते आए हैं, पढ़ाते आए हैं,प्रश्न करते आए हैं, लिखते आए हैं कि ये बातें ग्रहण करने योग्य नहीं है, लेकिन उन्हीं बातों को हम ग्राह्य मानकर ग्रहण किये हुए हैं और जो ग्रहण करने योग्य हैं, उनको त्याग करने योग्य मानकर उनको त्याग किये हुए हैं।** जहाँ तपस्या, त्याग, क्षमा और धैर्य का पालन करने की बातें आती हैं, वहां हम अनेक प्रकार के बहाने, अनभ्यास, असामर्थ्य, प्रतिकूलता, कष्ट या अन्य कही हुई बातों को लेकर के उनको परिपालन करने में अपने आपको असमर्थ दिखाते हैं। उनका पालन नहीं करते हैं। जो हटाने योग्य हैं, उनको अनेक प्रकार की चीजें

दिखाकर के कि ये तो ग्राह्य है, उनको ग्रहण करने का प्रयास करते हैं। उनका समर्थन करते हैं। ये स्थिति होती है।

भूमिका– दृढ़ प्रतिज्ञ व्यक्ति कभी विघ्नों से नहीं डरता। वह जब तक मर नहीं जाता, तब तक काम को करता रहता है और सब कुछ प्राप्त कर लेता है, इसलिए कहा जाता है:–

(29) दृढ़ संकल्प बाधा हटायें, प्रगति कराये।

जिस व्यक्ति ने यह ठान लिया है कि मुझे अपने जीवन को शांत बनाना है, उन्नत बनाना है, उसके लिये संसार की समस्त प्रतिकूलताएं भी मिलकर के उपस्थित हों, तो भी वो कोई बाधा उपस्थित नहीं कर सकती। जीवन में अभाव हो, अन्याय हो, कष्ट हो, रोग हो, वियोग हो, आरोप हो, विश्वासघात हो, छल कपट हो, सर्दी हो, गर्मी हो, भूख हो, प्यास हो, आप कोई भी बाधा को ले लीजिये, सभी में यही बात लागू होती है। सच्चे अर्थो में मन में यह इच्छा उत्पन्न होनी चाहिये कि, अब मुझे अपने जीवन को उन्नत करना है, पवित्र बनाना है, ईश्वर के अनुकूल बनाना है, ईश्वर की प्राप्ति के लिये पात्र बनाना है। ऐसा विचार करके व्यक्ति ईश्वर के समर्पित हो जाता है। ऋषियों के प्रति, उनके विधि–विधानों के प्रति, उनके अनुशासनों के प्रति, उनके सिद्धांतों के प्रति, उनके निर्देशों के प्रति जब व्यक्ति पूर्ण निष्ठा, श्रद्धा, विश्वास रख के पूरी शक्ति और बल से उन कार्यो को उसी के अनुरूप करता है तो निरंतर प्रगति होती रहती है और बहुत शीघ्रता से होती है।

भूमिका–अगर हम ज्ञानपूर्वक, बुद्धि से सोच–समझकर और होशपूर्वक काम नहीं करते हैंतो मन में जड़ता की स्थिति निर्मित होती है। आचार्यवर कहते हैं कि–

(30) विद्या, बुद्धि और स्मृति से रहित अभ्यास मूढ़ता उत्पन्न करता है।

जो कार्य हम कर रहे हैं, जो हमारी दिशा है, उसका प्रयोजन क्या है, उद्देश्य क्या है, उसकी मंजिल क्या है, इस बात को अच्छी प्रकार से

समझकर के चलना चाहिए। **प्रायः देखने में आता है कि व्यक्ति चलते–चलते भूल जाता है कि मैं कहां से चला हूँ, कहां खड़ा हूँ, कहां मेरे को जाना है, क्या मेरी गति है।** सतर्कता और सावधानी नहीं रहती है तो हमारी तमोगुण प्रधान मूढ़ मानसिक अवस्था बन जाती है। व्यक्ति चलता रहता है, चाहे दिशा ठीक है, चाहे दिशा गलत है, चाहे सही दिशा में है, चाहे भटक गया है। लेकिन उसके मन में इस बात की प्रतीति नहीं होती है, यह ध्यान नहीं रहता है कि मैं कहां जा रहा हूँ, मेरी मंजिल क्या है, उद्देश्य क्या है, मेरी गति कौन सी है, कहां से मैं चला हूँ, कितना रास्ता मैंने तय कर लिया है, क्या मेरे पास में साधन हैं। यह सब वह भूल जाता है। उसका चलना यंत्रवत बन जाता है। उसकी दिनचर्या यंत्रवत बन जाती है। एक व्यक्ति सुबह 10 बजे उठ रहा है, एक व्यक्ति 4 बजे उठ रहा है। यदि 4 बजे उठने का कोई विशेष लाभ नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं हैं, उन्नति का अहसास नहीं हो रहा है तो 4 बजे उठने का कोई अर्थ नहीं है। ऐसी स्थिति में सात्त्विक भोजन उसकी एक औपचारिकता बन जाती है, व्यायाम एक औपचारिकता बन जाती है, यज्ञ करना एक औपचारिकता बन जाती है, मंत्र बोलना एक औपचारिकता बन जाती है, सूत्रों को पढ़ना औपचारिकता बन जाती है। वह पढ़ते रहता है यंत्रवत। उसको ये प्रतीति ही नहीं होती है कि मैं इन क्रिया–कलापों को करके अपने जीवन में कुछ विशेष उन्नति, प्रगति, शांति, संतोष, निर्भीकता, आनंद या ईश्वर प्रणिधान की ऊंची स्थिति प्राप्त कर चुका हूँ। उसके काम सारे हो रहे हैं, हो सकता है कि प्रगति भी हो रही हो मगर वह यह अनुभव नहीं करता है। वह सुबह से चला है, दोपहर तक उसने 15 किलोमीटर रास्ता तय कर लिया है लेकिन इस बात की उसको प्रतीति ही नहीं होती हैं कि मैं सुबह से चला हूँ और मैंने 15 किलोमीटर पीछे मार्ग छोड़ दिया है, मैं 15 किलोमीटर आगे बढ़ गया हूँ और आगे मेरा गंतव्य स्थान मात्र 20 किलोमीटर रहा है। बस चलने में ही उसका ध्यान रहता है। यह मूढ़ अवस्था है। यह **मूढ़ अवस्था सारी परिस्थितियों में बनती है।** यह अध्ययन में भी बनती है, यज्ञ में भी

बनती है, मंत्र उच्चारण में भी बनती है, सेवा–परोपकार में भी बनती है। सेवा–परोपकार करके आनंद की अनुभूति नहीं होती है। सब यंत्रवत बन जाते हैं । ऐसी स्थिति के अंदर व्यक्ति इतना पुरूषार्थ करके, तपस्या करके सुख को चाहता है, चाहे वह भौतिक सुख हो या अभौतिक यानी ईश्वर की ओर से मिलने वाला सुख हो। जब सुख नहीं मिला तो वह विशेष उपलब्धि नहीं है। सामान्य व्यक्ति अनुभव नहीं कर सकता कि मैंने आज इतना ज्ञान–विज्ञान प्राप्त किया है। इस उद्देश्य को सुन करके, सूत्र को पढ़ करके आज मेरा ह्रदय पवित्र हो गया है, मेरी आत्मा पवित्र हो गई है। मैं विकसित हो गया हूँ, मेरा अन्तःकरण सत्त्व गुण की प्रधानता वाला बन गया है। एक दिन की बात दूर रही, एक सप्ताह की बात दूर रही, एक महीने की बात दूर रही, एक वर्ष में भी व्यक्ति स्वयं यह अनुभूति नहीं करता है कि मेरी उन्नति हो रही है, प्रगति हो रही है, मैं शांत हो रहा हूँ, स्थिर हो रहा हूँ, सत्त्वगुण प्रधान बन रहा हूँ। यह तुलनात्मक अनुभूति नहीं करता है। यंत्रवत काम करता रहता है। यंत्रवत करने में दुःख भी नहीं होता है, सुख भी नहीं होता है, ऐसी स्थिति भी आती है। जब कार्य कठिन हो जाता है तो व्यक्ति दुःखी हो जाता है। स्वतः व्यक्ति कार्य करते हुये यह अनुभूति नहीं करता है कि मैं चाहे पढ़ रहा हूँ, चाहे खा रहा हूँ, चाहे कोई कार्य कर रहा हूँ, मैं एक अच्छा पवित्र कार्य कर रहा हूँ, मैं ईश्वर की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ।

भूमिका–आत्म निरीक्षण यानी अपने जीवन को देखना। जब कभी आँख बंद कर अपने अन्तःकरण के भीतर झाँक कर अपने द्वारा किये गये शारीरिक, मानसिक और वाचनिक कार्यों का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं तो पता चलता है कि कितना राग–द्वेष रूपी जहर मैंने अपने मन के भीतर घोल कर रखा है और कितने हिंसा आदि वितर्क मैंने पाल के रखे हैं, जिनका न आदि दिख रहा है और न अंत। अभी तक हम अपने दोषों के प्रति आँख मूंदे बैठे थे, यह स्वकल्याण में बाधक था। आचार्यवर कहते हैं:–

(३१) आत्मनिरीक्षण करें।

एक दूसरा विषय है– प्रकृति के बंधन से छूटने का, अपने जीवन को पवित्र बनाने का, श्रेष्ठ बनाने का। उसका माध्यम है आत्म–निरीक्षण। आत्म–निरीक्षण का मतलब है– अपने आप को देखना।

आजकल संसार में देखने में आता है कि अधिकांश व्यक्ति अपना दो प्रकार का जीवन चलाते हैं। उनका एक वाह्य जीवन और एक आंतरिक जीवन होता है। वे एक ऐसा जीवन चलाते हैं, जिस जीवन को दुनिया देखती है। उस वाणी को, उस व्यवहार को, उस वेषभूषा को, क्रिया–कलापों को उसका पड़ोसी देखता है, मित्र देखता है, माता–पिता देखते हैं, उसके घर वाले देखते हैं, पत्नि देखती है, भाई देखता है। यह एक प्रकार का बाहर का जीवन होता है। दूसरे प्रकार का जीवन साथ–साथ (साइड,बाइ साइड़) चलता रहता है। वह उसका आंतरिक जीवन होता है। वह इस बाहर के जीवन से भिन्न होता है। इस जीवन को या तो ईश्वर जानता है अथवा व्यक्ति स्वयं जानता है, तीसरा व्यक्ति कोई नहीं जानता। तात्पर्य है कि आंतरिक जीवन को पत्नि नहीं जानती, पति नहीं जानता, माता–पिता नहीं जानते, ग्राम नगर वाले नहीं जानते। वह आंतरिक जीवन दो प्रकार का होता है। जो धार्मिक होते हैं, वैराग्यवान होते हैं, विद्वान होते हैं, तपस्वी होते हैं, त्यागी होते हैं, सहनशील होते हैं, विवेक, वैराग्य और सुसंस्कारों से युक्त होते हैं, ऐसे व्यक्तियों का आंतरिक जीवन बहुत निर्मल होता है, अति उत्तम होता है। ऐसे व्यक्ति आज संसार में बहुत कम हैं।

आंतरिक जीवन का जो दूसरा प्रकार है, वह यह है कि दूसरे प्रकार के आंतरिक जीवन के अंदर व्यक्ति जैसा अपने आप को बाहर प्रकट करता है, अन्दर वह उससे भिन्न होता है, निकृष्ट होता है, घटिया होता है, कम होता है, कपटी होता है, अन्यायी होता है, पक्षपाती होता है, छदमी होता है। प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति, आँख बंद करके दो मिनट के लिए बैठ जाये, और यह चिंतन करे कि मैं आज अपने को देखूँगा कि मेरे अंदर क्या है और बाहर क्या

है, कितना मेरे जीवन में झूठ है, कितना छल–कपट है, कितना पाप है, कितना अन्याय है, कितना पक्षपात है, कितना दिखावा है और कितनी लोकैषणा है। इन सारी बातों को यदि वह देखना चाहे तो देख सकता है। अपनी एक–एक क्रिया को देख सकता है। प्रातःकाल से लेकर रात्रि तक कितनी बार झूठ बोला, कितनी बार छल–कपट किया, कितनी बार अन्याय किया, कितनी बार पक्षपात किया, कितनी बार धोखा किया, कितनी बार अन्य बुरे–बुरे कार्य किये, इन सारे कार्यो का व्यक्ति चाहे तो इस आत्म–निरीक्षण के माध्यम से पता लगा सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है।

साधारण लोगों के आंतरिक जीवन और बाहरी जीवन के अंदर एक बहुत–बड़ा भेद है। इतनी गहरी खाई हो गई है कि व्यक्ति जैसा है नहीं, उससे कई गुना अधिक बढ़ा चढ़ाकर के अपने आप को दिखाना चाहता है। धार्मिक है नहीं, लेकिन अपने को धार्मिक बताने का प्रयास करता है। पुरूषार्थी है नहीं, लेकिन अपने आप को पुरूषार्थी दिखाने का प्रयास करता है। त्यागी है नहीं, लेकिन अपने आप को त्यागी दिखाने का प्रयास करता है। परोपकारी है नहीं, लेकिन अपने आप को परोपकारी दिखाने का प्रयास करता है। ईश्वर भक्त है नहीं, निःस्वार्थ भावना से काम करने वाला है नहीं, लेकिन दिखाने का प्रयास करता है। मन में स्वार्थ है और बाहर से निःस्वार्थ है। उसके मन में और, वाणी में और, तथा व्यवहार में कुछ और है। मन में कुछ और विचारता है, वाणी से कुछ बोलता है और शरीर से कुछ और करता है। इसको शास्त्रकार ने कहा है कि दुष्ट–आत्मा, छदमी, मुखौटे वाला।

दूसरा व्यक्ति होता है– संतपुरूष, महात्मा। वह जैसा बोलता है, वैसा ही करता है और जैसा करता है, वैसा ही मन में विचारता है अर्थात् उसकी वाणी में, मन में और उसके क्रिया–कलाप में कोई भेद नहीं होता है। यह उसका लक्षण है। ऐसे व्यक्ति को श्रेष्ठ कहा गया है। ऐसे व्यक्ति आज संसार के अंदर 100 में से नहीं, 1000 में से नहीं, लाख में से नहीं, करोड़ों में से कुछ गिनती के मिलते हैं। ये छोटे बच्चे के या भोले–भाले व्यक्ति के समान

होते हैं। इनके मन में जैसे विचार आते हैं, जो ज्ञान है, जो उन्होंने देखा है, सुना है, जाना है, समझा है या जैसा अनुमान किया है, वे पूछने पर यूं का यूं बता देते हैं। ऐसे व्यक्ति बहुत कम मिलते हैं जो अतिश्योक्ति से रहित होकर के बताते हों, छल–कपट से रहित होकर के बताते हों, लुकाव–छुपाव से रहित होकर के बताते हों। कहीं न कहीं, कभी न कभी, किसी न किसी के साथ, किसी न किसी घटना के साथ में व्यक्ति छुपाता है, अतिश्योक्तिपूर्ण बताता है। ऐसा व्यक्ति ही दुष्ट है, छदमी है, कपटी है। ऐसा व्यक्ति आध्यात्मिक क्षेत्र के अंदर कदापि उन्नति नहीं कर सकता। स्थिति वास्तव में यह है कि पूर्ण श्रद्धा, पूर्ण भक्ति, पूर्ण विश्वास, पूर्ण निष्ठा के साथ व्यक्ति इस आध्यात्मिक मार्ग को ठीक प्रकार से समझ कर चलने लग जाये तो उसकी उन्नति अति शीघ्र हो जाती है क्योंकि उसके मन के अंदर लुकाओ–छुपाओ नहीं रहता है। जिसके मन में लुकाओ–छुपाओ रहता है, वह व्यक्ति अपने मन मस्तिष्क के अंदर एक बहुत बड़ा बोझ लेकर के चलता है। उसके मन में हल्कापन नहीं होता है, पवित्रता नहीं होती है, निष्कामता नहीं होती है, ऐषणारहित स्थिति नहीं होती है। निःस्वार्थ भावना उसमें नहीं होती है। निश्चित रूप से ऐसा छदमी व्यक्ति अपने जीवन को अत्यंत भार का बोझ बनाकर के चलता है, उलझा रहता है। **जो बंधन से छूटना चाहता है, उस व्यक्ति को चाहिए कि वह मन, वचन और व्यवहार, इन तीनों से एक होकर के चले। यह तब हो सकता है, जब वह व्यक्ति आत्म–निरीक्षण करे।**

दुनिया में व्यक्ति को महान बनाने के, उन्नत बनाने के, पवित्र बनाने के बहुत साधन हैं। कुछ लोग कहते हैं, दर्शनों का अध्ययन करो, व्याकरण का अध्ययन करो, वेदों को पढ़ो, गुरुकुलों में जाओ, तपस्या करो, त्याग करो, कटी–वस्त्र पहनो, मुण्डन करा लो, बिना मिर्च–मसाले का भोजन करो, यज्ञ करो, सेवा करो। इस तरह वे पचास काम बताते हैं जीवन को पवित्र बनाने के। लेकिन इतने सारे कार्यो को करने के विपरीत यदि व्यक्ति इस एक

कार्य को प्रधानता देकर करे कि मैं आज से अपने जीवन को आँखें बंद करके देखूँगा और अपने जीवन की तुलना ईश्वर से, ऋषियों से, शास्त्रों से, महापुरूषों से और सत्य,धर्म,आदर्श और मर्यादाओं से करूंगा और फिर यह देखूँगा कि मुझमें कितनी त्रुटियां हैं, भूले हैं, उनको मैं पकड़ के दूर करूंगा। जैसा मेरे को पकड़ में आयेगा, असत्य को छोड़ दूँगा और सत्य को ग्रहण कर लूँगा, अधर्म को छोड़कर के धर्म को ग्रहण कर लूँगा। जहाँ–जहाँ उसको इस प्रकार की बातें दिखाई देती हैं, तत्काल वह बहुत शीघ्र उसे दूर कर अपने दुविधापूर्ण जीवन को दूर कर लेता है।

वह इस आत्म–निरीक्षण के माध्यम से जब मनसी, वतसी और कर्मणी एक हो जाता है तो बहुत हल्का हो जाता है। मन–वचन–कर्म से एक होने वाला व्यक्ति ही अत्यंत निर्भीक, साहसी और बलवान हो पाता है। जो आध्यात्मिक गुण होते हैं, वह सारे के सारे गुण इस प्रकार के पवित्र व्यक्ति के जीवन में आ जाते हैं। उसे दुनिया में कोई भय नहीं होता है। उसके ऊपर कितना ही आरोप लगाया जाये, विश्वासघात किया जाये, छल–कपट किया जाये, अन्याय किया जाये, पक्षपात किया जाये, कितना ही उसका अपमान किया जाये, उसको किसी प्रकार का किंचित मात्र भी मानसिक रूप से दुःख नहीं होता है। दुःख होता ही नहीं है, यह उसकी कसौटी है।

आध्यात्मिक व्यक्ति का यह परीक्षण नहीं करना चाहिए कि इस व्यक्ति का बड़ा अच्छा प्रवचन है, यह बड़ा तपस्वी है, बिना कपड़ों के रहता है, बिना रोटी खाये रहता है, कम से कम भोजन करता है, केवल दूध पीता है, नंगे पांव चलता है, इसके पास पैसा ही नहीं है, बड़ा अच्छा बोलता है, लेखक बहुत अच्छा है, इसकी बड़ी संस्था है और यह तो बड़ा आचार्य है। इस तरह का कोई परीक्षण करने की जरूरत नहीं है। यह मिथ्या परीक्षण है। इस प्रकार के परीक्षण में कोई भी छदमी, छलि–कपटी व्यक्ति पास हो सकता है। परीक्षा यह करनी है कि वह व्यक्ति प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थितियों में कितना प्रसन्न रहता है, क्या दुःखी तो नहीं होता, झूठ तो नहीं बोलता,

छल–कपट तो नहीं करता, अन्याय तो नहीं करता। यह मुख्य कसौटी है उसकी। देखना यह है कि क्या आनंद और निर्भीकता उसके जीवन में है। हमारे गुरू स्वामी सत्यपति जी में मैंने एक गुण विशेष रूप से देखा कि कभी मैंने इनको दुःखी नहीं देखा। कितनी बड़ी विपत्ति आती है, वे कभी दुःखी नहीं होते हैं, मिथ्या आरोप नहीं लगाते हैं, झूठ नहीं बोलते हैं, छल–कपट नहीं करते हैं, अन्याय नहीं करते हैं, पक्षपात नहीं करते हैं, यह मुख्य कसौटी है। रंग से, रूप से, चमड़ी से, दमड़ी से, आकार से और प्रवचनों से योगी की या आध्यात्मिक व्यक्ति की कोई परीक्षा नहीं होती है। जो इस तरह से परीक्षण करता है, वह आधी अधूरी परीक्षा करता है। परीक्षा यह है कि व्यक्ति प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थितियों के अंदर कितना प्रसन्न रहता है, क्या वह घबराता नहीं है। यह स्थिति अपने अन्दर पैदा की जा सकती है। यही आध यात्मिकता है।

यह बंधन से रहित स्थिति तभी बन सकती है, जब ईश्वर का सानिध्य प्राप्त हो। ईश्वर का साक्षात्कार कर लेना बहुत ऊंची बात है लेकिन ईश्वर के विषय में पूर्ण विश्वास हो जाना, पूर्ण श्रद्धा हो जाना, पूर्ण निष्ठा हो जाना, पूर्ण प्रेम हो जाना और ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पित होकर के चलना और अपनी पूर्ण शक्ति, प्रयास, ज्ञान–विज्ञान, सामर्थ्य और योग्यता से पूर्ण रूप से चलते रहने वाला व्यक्ति भी संसार में अलौकिक बन जाता है। अगर ईश्वर का साक्षात्कार नहीं किया है, साक्षात्कार किये बिना भी यदि व्यक्ति ईश्वर के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखकर के उसकी आज्ञाओं का पूर्ण रूप से पालन करता है, उसके आदर्शों पर पूरी तरह समर्पित होता है, वह व्यक्ति भी अत्यंत अद्‌भुत बन जाता है। उसके जीवन से अधिकांश दुःख चले जाते हैं। यह स्थिति अपने आप नहीं बनती है बल्कि स्वयं बनानी होती है।

प्रायः आज यह देखने में आता है कि व्यक्ति अपने जीवन का उद्‌देश्य इस स्थिति को प्राप्त करने का न बनाकर के यह बनाता है कि मैं डॉक्टर बनूँगा, इंजीनियर बनूँगा, मैं फैक्ट्री खोलूँगा, मैं नेता बनूँगा, यह

बनूँगा। इन सारी स्थितियों को ऋषियों ने हीन माना है। क्यो? इन सारी परिस्थितियों के अंदर व्यक्ति पूर्ण रूप से सुखी नहीं हो सकता, पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं हो सकता। इसलिए यह जीवन का अंतिम लक्ष्य नहीं हो सकता। आजीविका चलाने के दृष्टिकोण से गौण लक्ष्य जरूर हो सकता है।

पूर्ण रूप से बंधन रहित स्थिति तब आती है, जब व्यक्ति ईश्वर के साथ अपना संबंध बना लेता है। ईश्वर के साथ अपना संबंध बना लेते ही व्यक्ति के अंदर वे गुण आ जाते हैं कि जिनके आधार पर व्यक्ति समस्त संसार की आपत्तियों से, कठिनाईयों से, बाधाओं से, अभावों से, प्रभावों से, अन्यायों से, छल–कपट से और सारी प्रतिकूल परिस्थितियों से अपने आप को बचाकर के प्रसन्न, सुखी, शांत, स्वतंत्र और निर्भीक बना रहता है। ऐसी स्थिति ही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है।

आज अधिकांश धार्मिक संस्थानों के अंदर धर्म की आड़ में, पूजा की आड़ में, परोपकार की आड़ में, समाज–सेवा की आड़ में, देश सेवा की आड़ में या मानवता की सेवा की आड़ में अपनी ऐषणाओं की पूर्ति हो रही है। कई व्यक्ति बड़ा–बड़ा काम करते हैं, दान देते हैं, तपस्या करते हैं, भागते हैं–दौड़ते हैं, भूखे रहते हैं, तन–मन–धन लगाते हैं। ये अच्छे काम हैं, ये बुरे काम नहीं हैं लेकिन **अच्छे काम करते हुये भी जिन व्यक्तियों के साथ ईश्वर का सानिध्य नहीं है, वह व्यक्ति तब भी दुःखी होगा।** ऐसे व्यक्ति देखे हैं जो कि लाखों रुपयों का दान करते हैं और महादुःखी हैं। हमने प्रवचन देने वालों को दुःखी, पढ़ाने वालों को दुःखी, यज्ञ कराने वालों को दुःखी, और उद्योगपतियों को दुःखी देखा है। त्यागी, तपस्वी, विद्वान और लेखक दुःखी हैं क्योंकि सच्चे सुख का जो मुख्य आधार है, उस ईश्वर को उन्होंने पकड़ा नहीं। ईश्वर को छोड़कर के कितने ही परोपकार के शुभ कार्य, समाज–सेवा के कार्य को करें तो भी व्यक्ति दुःखी रहेगा। इसके विपरीत ईश्वर के साथ जुड़ा हुआ व्यक्ति कुछ भी नहीं कर रहा है, न पढ़ रहा है, न लिख रहा है, न कम्प्यूटर चला रहा है, न सेवा कर रहा है, न परोपकार कर रहा है, न घूम

रहा है। वह तो अपनी कुटिया में बैठा है फिर भी वह व्यक्ति सुखी होगा। सच्चे ईश्वर को अपने मन–मस्तिष्क में बैठा कर के पूर्ण श्रद्धा रखने वाला व्यक्ति उसके निर्देश के अनुसार चले तो यह असंभव है कि वह दुःखी हो। सारे संसार के पदार्थ क्यों न छीन लिये जायें, उसको दुःख नहीं होगा। सांसारिक प्रतिकूलताओं से, सांसारिक बाधाओं से, अन्यायों से अगर व्यक्ति दुःखी है तो समझ लेना चाहिए कि इस व्यक्ति का ईश्वर के प्रति पूर्ण विश्वास नहीं है अथवा यह ईश्वर को जानता नहीं है।

प्रायः देखने में आता है कि धन छिन गया, बच्चा मर गया, पत्नि मर गयी, कोई अपमान कर दिया, अनिष्ट हो गया, तो इन स्थितियों में व्यक्ति दुःखी होता है। अगर व्यक्ति दुःखी होता है, चिंतित होता है या उलटा–सीधा बोलता है तो समझ लीजिये कि वह व्यक्ति पूर्ण आस्तिक नहीं है या वह अपूर्ण आस्तिक है। उसकी ईश्वर के प्रति श्रद्धा नहीं है। जिसकी ईश्वर के प्रति श्रद्धा है, निष्ठा है, विश्वास है, प्रेम है और व्यक्ति उसके सानिध्य में प्राप्त हुआ है, वह सारे संसार में प्रलय क्यों न हो जायें फिर भी दुःखी नहीं होगा। देखते हैं हम, बड़े–बड़े महारथियों, बड़े–बड़े प्रकाण्ड व्यक्यिों को, उनके सामने ज्यों ही प्रतिकूलता आती है, तत्काल जो चेहरा है, जो विचार है, जो व्यवहार है, बिल्कुल भिन्न बन जाते हैं। प्रतिकूलताओं में व्यक्ति का परीक्षण होता है। प्रतिकूलताओं को आध्यात्मिक व्यक्ति ठीक प्रकार सहन कर सकता है। ये सहनशक्ति, ये धैर्य, इतनी गंभीरता और समस्याओं का समाधान केवल मात्र ईश्वर की सहायता से प्राप्त होता है। आप चाहे सारे शास्त्रों को क्यों न पढ़ लें, चारों वेदों को रट लें तो भी कुछ नहीं होगा। व्यावहारिक रूप में ईश्वर के प्रति अनुमान प्रमाण से, शब्द प्रमाण से ठीक प्रकार से जान लेना जरूरी है। **मस्तिष्क में यह बैठा लेना जरूरी है कि ईश्वर है, और मुझे देख रहा है, सुन रहा है और जान रहा है।** उसके बिना मैं कोई कार्य करने में समर्थ नहीं हो सकता। ऐसा विचार करके चलने वाला व्यक्ति ही इन संसार के जंजालों से बच सकता है। तब ही पूर्ण सुखी रह सकता है और अपने जीवन को ईश्वर

के सानिध्य में रखता हुआ, उसके निर्देश के अनुसार, सारे जीवन को चलाता हुआ अपने जीवन को पवित्र कर सकता है। ऐसा व्यक्ति ही अपने जीवन के उद्देश्य (मोक्ष) को प्राप्त कर सकता है। शेष व्यक्तियों के लिए जन्म–जन्मांतर तक, फिर मरना फिर जीना, ये स्थिति बनती है।

हमें सिद्धांत रूप से यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि जैसे हम धन को कमाते हैं और कमाये धन का निरीक्षण–परीक्षण करते हैं। कितना धन हो गया है मेरे पास में, लौकिक आदमी इसका हिसाब लगाता है। आज से 10 वर्ष पहले तो मेरे पास में यह जमीन, सोना, चाँदी और मकान मिलाकर के 15 लाख के थे, आज ये 50 लाख के हो गये हैं, ऐसा विचार करता है। फिर जैसे–जैसे धन बढ़ता जाता है, वह आगे विचार करता जाता है कि अब मेरे 80 लाख के हो गये हैं, अब 1 करोड़ के हो गये हैं। ऐसे ही **आध्यात्मिक व्यक्ति भी आत्म–निरीक्षण कर इस प्रकार से हिसाब करता है कि पहले मैं कितना दुःखी होता था, पहले मेरा धैर्य कितना था, पहले मेरी सहन–शक्ति कितनी थी, पहले मैं गंभीर कितना था, पहले मैं परोपकारी कितना था, पहले मैं शांत–सुखी और प्रसन्न कितना था, पहले मैं निर्भीक कितना था और आज कितना हो गया हूँ।** आत्मनिरीक्षण के दौरान इन आध्यात्मिक संपत्तियों को लेकर व्यक्ति विचार करता है।

व्यक्ति की निर्भीकता, प्रसन्नता, शांति, निष्कामता आदि–आदि, जो गुण बताये गये हैं, वे बढ़ रहे हैं तो समझना चाहिए कि व्यक्ति की उन्नति हो रही है। इसके विपरीत वह दर्शन भी पढ़ रहा है, वेद भी पढ़ रहा है, पढ़ते–पढ़ते 2 वर्ष हो गये हैं, 4 वर्ष हो गये हैं, 6 वर्ष हो गये हैं, व्याकरण भी पढ़ ली, संस्कृत बोलना भी आ गया, कविता भी लिख ली, सब कुछ कर लिया उसने, लेकिन उसके जीवन के अंदर, जो सच्चाई है, निष्कामता है, सहन–शक्ति है, धैर्य है, गंभीरता की स्थिति है, वह वैसी की वैसी बनी हुई है बल्कि पहले की तुलना में गिर गई है तो समझना चाहिए कि अब तक का

किया धरा सब कुछ बेकार है।

हमने जीवन में ऐसे–ऐसे विद्वानों को देखा है जो दर्शनों के, उपनिषदों के, संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान हैं, लेकिन उनके जीवन के अंदर महान दुःख भरा हुआ है । ईर्ष्या से भरे हुये, कंजूसी से भरे हुये, स्वार्थ से भरे हुये, राग और ममता से भरे हुये, ऐसे व्यक्तियों के खोखले जीवन को मैंने देखा है। ऐसा जीवन हमको नहीं चाहिए। मैं तो उस व्यक्ति को अच्छा मानता हूँ जिसे शायद बोलना नहीं आता है, दो अक्षर नहीं आते हैं, लेकिन मार्ग में चला हुआ है।

प्रायः यह भी देखने में आया है कि ज्यों–ज्यों व्यक्ति शास्त्रों को पढ़ता है, दर्शनों को पढ़ता है, संस्कृत भाषा आती है, त्यों–त्यों, लुकाओ–छुपाओ, छल–कपट, निंदा, चुगली, जीवन में बढ़ती जाती है। बहुत कम ऐसे व्यक्ति होते हैं जो राग, द्वेष, निंदा और चुगली से मुक्त होते हैं। अधिकांश के जीवन में बोलने पर परिग्रह (अनावश्यक बोलना), करने पर परिग्रह और विचारने में परिग्रह, लिखने में परिग्रह और क्रिया–कलापों में परिग्रह भरा पड़ा है। व्यर्थ की बातें लोगों के पकड़ में नहीं आती है।

सूक्ष्मता से आत्म–निरीक्षण करने वाले व्यक्ति को बहुत कुछ बताने की जरूरत नहीं है, कोई विशेष निर्देश देने की जरूरत नहीं है। वह भूल करेगा ही नहीं। वह पूरी शक्ति, बल, सामर्थ्य से काम करेगा। उससे न त्रुटि होगी, न भूल होगी। वह व्यवहार से और वाणी से गलत बोलेगा नहीं, मन से भी गलत विचार नहीं करेगा, क्यों? उसे यह पता है कि मन से गलत चिंतन करने पर उसकी उपासना नष्ट हो जाती है, उसकी शांति नष्ट हो जाती है, उसकी पवित्रता, उसका हल्कापन, उसकी निर्मलता नष्ट हो जाती है। वह ऐसे जीवन को नहीं चाहता है। आध्यात्मिक आदमी तो ऐसे हल्के–फुल्के जीवन को चाहता है, जैसे आकाश में उड़ रहा है। इतनी निष्कामता उसके जीवन में रहती है। इसके विपरीत जो व्यक्ति झूठ भी बोल रहा है, निंदा भी कर रहा है, आलसी बना हुआ है, खाने–पीने में, उठने में, बैठने में, लेन–देन में संयम

नहीं है और यम–नियम का सूक्ष्मता से पालन नहीं कर रहा है, सकामता (स्वार्थता) बनी हुई है तो ऐसा व्यक्ति आध्यात्मिक क्षेत्र में चल नहीं सकता। लौकिक या आध्यात्मिक व्यक्ति में यदि कार्य करते हुये प्रसन्नता नहीं है, आनंद नहीं है, निष्कामता नहीं है तो समझो कुछ भी नहीं है।

आत्म–निरीक्षण के माध्यम से हम अपने जीवन को निर्मल, पवित्र और बंधन से रहित बना सकते हैं। आत्म–निरीक्षण करने से पता चलता है कि हमने कुछ ऐसी बातें जो वास्तव में हानिकारक हैं, पकड़ रखी हैं और जो लाभकारी बातें है, उनको छोड़ रखा है। आत्म–निरीक्षण किये बिना व्यक्ति को इन बातों का पता नहीं चलता है। **अपने जीवन को आदर्श मार्ग पर ठीक प्रकार से चलाने के लिए, ईश्वर की प्राप्ति के लिए और जीवन को अत्यंत प्रसन्न, सुखी, संतोष, निर्भीक और स्वतंत्र बनाने के लिए आत्म–निरीक्षण के माध्यम से अपने दोषों को जानें।**

दो प्रकार का जीवन बना हुआ है– बाहरी अलग और आतंरिक अलग। हो सकता है कि अनेक बार आप बातों को छुपाते होंगे, अतिश्योक्तिपूर्ण बोलते होंगे, जो बात बताने योग्य है उसको टालते होंगे, बताने योग्य को नहीं बताते हैं, कम बताने वालों को अधिक बताते हैं। आत्म निरीक्षण से यह पता चलेगा। **अत्यंत निर्मल छोटे बच्चे की तरह हमारा जीवन होना चाहिए।** ऐसे जीवन को चलाने वाला व्यक्ति ही अपने जीवन को हल्का–फुल्का लेकर के चलता है अन्यथा घर छोड़ दिया, मां–बाप छोड़ दिये, धन–संपत्ति छोड़ दी, माता–पिता को छोड़ दिया, सब कुछ छोड़ दिया और फिर भी संसार की प्रवृत्तियों जैसे– राग की, ईष्या की, अहंकार की बनी रहीं तो लौकिक और आध्यात्मिक व्यक्ति में क्या अंतर रहा।

व्यक्ति मंदिर जाये या न जाये, ईश्वर की उपासना करे या न करे, बैठकर के जप करे या न करे, भक्ति के गीत गाये या न गाये लेकिन जो व्यक्ति पूर्ण तन्मयता से और सच्चे ह्रदय से बैठकर के आँखे बंद करके अपने जीवन को ठीक प्रकार देखता है तो उसको त्रुटि दिखाई देती है। वह उनको

हानिकारक मानता है और उनको नष्ट करने के लिए प्रयास करता है तो निश्चित रूप से ऐसा व्यक्ति पवित्र बन जाता है।

हम कहां पर अटक जाते हैं, यह भी सुन लीजिए आप। **पहले तो हम अपनी गलतियों को, दोषों को जानने का प्रयास नहीं करते हैं। अगर जान लेते हैं, तो उनको देखकर भूल जाते हैं। भूलते नहीं है तो उनको हानिकारक नहीं मानते हैं। हानिकारक मानते हैं, तो उनको हटाने के लिए वृत–संकल्प नहीं लेते हैं। अगर वृत–संकल्प लेते हैं तो उनको हटाने के लिए कोई प्रयास नहीं करते हैं,तपस्या नहीं करते हैं, साधनों को नहीं जुटाते हैं, सतर्क सावधान नहीं रहते हैं। इससे फिर कार्यों मे असफलता मिलती है।**

पुराने बुरे संस्कार जगते हैं, वे नये अच्छे संकल्पों को दबा देते हैं। इसके कारण जब दुबारा उलटे काम कर देते हैं तो फिर विचारते हैं कि सीधा काम मेरे लिए असंभव है, चलो इसको छोड़ो। इस तरह वे अच्छे सीधे काम को छोड़कर उस उलटे काम को फिर करने लग जाते हैं। इस प्रकार व्यक्ति अच्छे काम को फिर छोड़ देता है। यह सारी हमारी नास्तिकता की स्थिति है।

आत्म–निरीक्षण करके देखेंगे तो पता चलेगा कि कोई व्यक्ति आधा घंटा आस्तिक रहता है बस, शेष समय में नास्तिक बना रहता है और कोई अधिक प्रयास करने वाला हुआ वह एक घंटा और कोई पुरूषार्थ करने वाला दो घंटे, ढाई घंटे, तीन घंटे या चार घंटे आस्तिक बना रहता है। आस्तिकता का मतलब क्या है? आस्तिकता का मतलब है– दिल–दिमाग के अंदर, मन–मस्तिष्क के अंदर, ईश्वर की सत्ता की अनुभूति शब्द प्रमाण से और अनुमाण प्रमाण से बनायें रखना। ईश्वर मुझे हर समय देख रहा है, यह अनुभव करना।

मात्र यह जानना पर्याप्त नहीं है कि यह काम गलत है, यह काम अच्छा है, यह धर्म है, यह अधर्म है, यह पाप है, यह पुण्य है। इतना जानकर

के यह भी संकल्प होना चाहिए कि मुझे यह अच्छा धार्मिक काम करना है। जो ऐसा करने लिए पूर्ण प्रयास करता है, तपस्या करता है, त्याग करता है, पुरूषार्थ करता है, वह व्यक्ति ही पूर्ण रूप से आस्तिक है अर्थात् ईश्वर को मानने वाला है। इसके विपरीत, जानने को तो खूब जान लेता है कि ये खराब है, ये अच्छा है, ये धर्म है, ये अधर्म है, ये पाप है, ये पुण्य है, ये न्याय है, ये अन्याय है, ये उचित है, ये अनुचित है, ये कर्त्तव्य है, ये अकर्त्तव्य है, लेकिन फिर भी करता कुछ नहीं, वैसा का वैसा पड़ा रहता है। यह शाब्दिक ज्ञान कहलाता है। शाब्दिक ज्ञान के ऊपर व्यक्ति विचार करे, फिर चिन्तन करे, अच्छे को करे, बुरे को छोड़े और छोड़े रखे और अच्छे को ग्रहण कर रखे, तब जाकर के व्यक्ति को इस मार्ग में सफलता मिलती है। प्रायः व्यक्ति जानकर के अटक जाता है कि यह अच्छा है, यह बुरा है मगर अच्छे को ग्रहण करने का और बुरे को छोड़ने का मन में कोई संकल्प नहीं होता और ऐसे व्यक्ति को लोग विद्वान कह देते हैं। वास्तव में पूर्ण विद्वान तो वह होता है, जो शब्दार्थ सम्बंध को जानता है और जानकर के उसके विषय में निश्चय करता है, निश्चय करके बुरे को छोड़ने और अच्छे को ग्रहण करने के लिए प्रयास करता है, तपस्या करता है और बुरे को छोड़ देता है और अच्छे को जीवन में उतार लेता है। याद रहे कि **व्यक्ति केवल मात्र पढ़ लेने से, सुन लेने से, जान लेने से विद्वान नहीं बन जाता। विद्वान वही है जो कि जाने हुए को, सुने हुये को अपने आचरण में लाये।** ऋषि ने लिखा है कि विद्या का फल है– आचरण में आ जाना। पढ़ा हुआ, लिखा हुआ, जाना हुआ, समझा हुआ, यदि क्रिया रूप में आयेगा तो फल है। पढ़ा–लिखा अगर क्रिया रूप में नहीं आता है तो सब गलत है। यह भी आजकल देखने में आता है कि समाज के अन्दर पढ़ा–लिखा अधिकांश व्यक्ति जितना झूठा है, छली–कपटी है, हिंसक है, द्रोही है, बुरा है, उतना अनपढ़ व्यक्ति नहीं है।

आत्मनिरीक्षण हर समय करें:–

आत्म–निरीक्षण का कार्य व्यक्ति दिन में कभी भी कर सकता है।

अगर दिन में कार्य करते समय व्यक्ति न कर पाये तो भी रात को सोते समय तो कर ही सकता है। ये **मोटी स्थिति** है। इससे **मध्यम स्थिति** है, बीच–बीच में आत्म निरीक्षण करके अपने स्तर को देखना। आत्म–निरीक्षण की सूक्ष्म स्थिति है कि व्यक्ति आधे–आधे घंटे में यह देखने का प्रयत्न करे कि क्या मेरा पतन हो रहा है या उत्थान हो रहा है। **अति सूक्ष्म स्थिति** यह होती है कि वह हर कार्य को करते हुये ही नहीं बल्कि कार्य करने से पहले इस बात का परीक्षण कर लें कि इस कार्य को करने से मेरे मन में, मेरी वाणी में और मेरे व्यवहार में किस प्रकार के क्रियाकलाप होंगे, उसके परिणाम और प्रभाव क्या होंगे। इनको करके क्या मैं अशांत होऊंगा, अपमानित होऊंगा या यह स्थिति दुःख को उत्पन्न करेगी। दुःख की स्थिति को जानकर वह तत्काल उस स्थिति को रोक देता है। यही उच्च स्तर की स्थिति है।

आध्यात्मिक व्यक्ति, आत्मनिष्ठ व्यक्ति प्रत्येक क्षण आत्म निरीक्षण के माध्यम से अपने उत्थान और पतन को देखता रहता है। वह हर समय अपनी स्थिति का निरीक्षण करता रहता है कि मैं अभी दुःखी हूँ, कि सुखी हूँ। मैं अभी सत्य से युक्त हूँ या असत्य से। मैं न्याय से युक्त हूँ या फिर अन्याय से। मुझमें सकामता है या निष्कामता है। मन में विवेक ख्याति बनी हुई है या नहीं। ईश्वर प्रणिधान की स्थिति बनी है या विषय प्रणिधान है।

जिसने ज्ञान–विज्ञान प्राप्त किया है, ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति ही इस बात का पता तत्काल लगा पाता है। कोई–कोई ऐसा होता है कि वह काम के अंत में पता लगा पाता है। कोई दिन में दो–चार बार पता लगा लेता है। कोई आध ा–आधा घन्टे में गलती जान लेता है। कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं कि जिनमें संस्कार अच्छे होते हैं। व्यक्ति प्रत्येक मिनट में अथवा प्रत्येक कार्य करने के काल में ही ये पता लगा लेते हैं कि अभी मेरी कौन सी स्थिति बनी हुई है। अगर हमारी ऐसी उच्च स्थिति नहीं बनी है, तो हमें उसको प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।

आप आत्मनिरीक्षण करके अपने अन्दर उठ रहे विचारों की स्थिति

को देखेंगे तो पायेंगे कि जैसे लौकिक व्यक्ति विचार करता है, वैसे ही विचार हमारे मन में भी आते रहते हैं। एक लौकिक व्यक्ति जैसा बोलता है, व्यवहार करता है, वैसा ही आपके मन का और वाणी का प्रयोग होता है। जिस तरह का वह व्यवहार करता है, वैसे ही आप भी व्यवहार करते होंगे। आपके व्यवहार, विचार और वाणी बिल्कुल लौकिक व्यक्तियों की तरह होते हैं, कोई अन्तर नहीं होता है उसमें। हमारे अंदर न गंभीरता रहती है, न शिष्टता रहती है, न शालीनता रहती है और न अर्न्तवृत्ति रहती है। **लौकिक व्यक्तियों की तरह ही हमारा विचार, वाणी और व्यवहार बनता रहता है।**

आश्चर्य तो यह होता है कि उस स्थिति को हम उस समय नहीं पकड़ पाये तो कोई बात नहीं। कई बार तो उस क्रिया के घट जाने के बाद भी नहीं पकड़ पाते। दो–चार घंटे के बाद भी नहीं समझ पाते। रात्रि को सोने से पहले भी व्यक्ति आज जो विशेष घटनायें घटी हैं, उन विचारों को ठीक प्रकार से पकड़ नहीं पाते। ऐसे व्यक्ति कदापि उन्नति नहीं कर सकते। वे आध्यात्मिक व्यक्ति हैं भी नहीं । न वे धार्मिक हैं, न आध्यात्मिक हैं। अपनी किसी त्रुटि को, दोष को, भूल को, कमी को, अधर्म को, अनिष्ट कर्म को, वितर्क को, पक्षपात को और यम–नियम के विरूद्ध आचरण को दिन में पकड़ नहीं पा रहा है। दिन में जो किया है, वह उसे रात्रि में भी नहीं पकड़ पा रहा है और अगर पकड़ लेता है तो भी उसको हानिकारक नहीं मान रहा है। अगर हानिकारक मान लेता है तो भी उसको रोकने के लिए मन में संकल्प नहीं ले रहा है। कभी संकल्प ले भी लेता है, तो उसको नष्ट करने के लिए साधनों को नहीं जुटा रहा है। उनसे सतर्क, सावधान नहीं रह रहा है। उन्हें हटाने के लिए ईश्वर से सहायता नहीं माँग रहा है। ऐसा व्यक्ति फिर दुबारा वही त्रुटि करता है, और बार–बार त्रुटि करता ही रहता है।

आप अनुभव करेंगे कि व्यक्ति ने अपने घर को छोड़कर आश्रम में जाकर के अपनी लौकिक प्रवृत्तियों को, लौकिक वातावरण को छोड़ दिया है। आश्रम में सादा जीवन, उच्च विचार, सात्त्विक वातावरण, यज्ञ,संध्या, उपासना

और स्वाध्याय आदि सब कुछ अलौकिक स्थितियां हैं। ये संसार से, सांसारिक प्रवृत्तियों से भिन्न हैं। ऐसा होने पर भी वो पुरानी त्रुटियाँ अनेक बार होती हुई दिखाई देती हैं । वो मूल प्रवृत्तियाँ तो जब से आई हैं, तब से चल रही हैं। **वही त्रुटि जो दो वर्ष पहले हुई थी, वह आज भी हो रही है, कल भी हुई थी। विचारों में, वाणी में और व्यवहार में भी वैसी ही त्रुटि हो रही है।** विवेक दब जाता है और अविवेक उभर आता है। निःस्वार्थता दब जाती है, स्वार्थ उभर आता है। सत्त्व गुण दब जाता है, रजोगुण, तमोगुण उभर आता है। सावधानी, पुरूषार्थ, सतर्कता दब जाती है, असत्य, अकर्मण्यता और निद्रा उभर आती है। परोपकार की भावना दब जाती है, स्वार्थ की भावना उभर आती है। आराम, सुख, प्रशंसा और विषय भोगों के आधार वाली जो स्थिति है, वह उभर आती है। पुरूषार्थ, संयम, वृत, संकल्प और तपस्या ये सब दब जाते हैं।

ये विषय मैं आपको बता रहा हूँ, ये मेरे को भी 20 वर्ष के बाद में समझ में आए हैं। लेकिन पहले मुझे यह समझाने वाला कोई नहीं था। लेकिन जब हमें यह विषय बताया गया, हमको सुनाया गया, यह विषय समझाया गया तो हमने उसके ऊपर निदिध्यासन किया, चिंतन किया, विशेष गवेषणा की, उसका व्यवहार में प्रयोग किया तो उनका प्रयोग करते–करते वास्तविकता की अनुभूति होने लगी। समझ में आ गया कि प्रयत्न करने पर ये स्थितियां हमारे पकड़ में आ सकती है। हम अपने में सुधार कर सकते हैं।

हम ऐसे निरीक्षण–परीक्षण कर सकते हैं। आपको बताने वाला होने पर भी, समझाने वाला होने पर अगर आप पकड़ नहीं पा रहे हैं, छोड़ देते हैं उसको ,तो इस स्थिति को बदलना जरूरी है। आप लोगों की भाषा को देखिए, व्यवहार को देखिए, स्वार्थ को देखिए, सकामता को देखिए, किसी भी चीज को देखिए। **किसी का स्तर ऊँचा है, किसी का स्तर नीचा है। मगर व्यक्ति इस चीज को पकड़ नहीं पाता है।**

अत्यन्त निष्कामता, अत्यन्त समर्पण ईश्वर पर रखें और आदर्शों को सामने रखें। एक क्षण के लिये भी असावधान न रहें। मन में किसी वितर्क को

न उत्पन्न होने दें। किसी दोष को, भूल को, त्रुटि को न होने दें। विचारों में ही न होने दें। ऐसा संकल्प करके चलें तो दोष वाणी में कैसे आएगा? आएगा ही नहीं। जब मन को ही पकड़ लिया तो इन्द्रियाँ क्या काम करेंगी, शरीर क्या काम करेगा? कुछ नहीं करेगा। लेकिन हम दोषों को पकड़ते नहीं हैं।

अब समझ में आता है कि ऋषियों ने क्यों ये बार–बार कहा कि इन–इन गुणों वाला व्यक्ति उनको विद्या दे, शिक्षा दे, उनको योग के विषय में बताए। आलसी को, प्रमादी को, अयोग्य व्यक्ति को, लोभी को, अनुशासनहीन को और स्वार्थी को यह विद्या नहीं दे। जिनका विवेक वैराग्य प्राप्ति का लक्ष्य नहीं है, जिनका समाधि का लक्ष्य नहीं है, आत्मा का साक्षात्कार करने का लक्ष्य नहीं है, जो मन इन्द्रियों पर नियंत्रण रखे हुए नहीं है, जो निन्दा करता है, चुगली करता है, जिसकी वाह्य वृत्तियाँ हैं, जो अत्यंत लौकिकों की तरह बना हुआ है, उस व्यक्ति को ब्रह्मविद्या देने का विधान नहीं किया गया। ऐसे लोगों को दें तो उसका कुछ भी लाभ नहीं होता। यहीं फर्श के ऊपर अनाज के दाने गिरा दो तो कुछ नहीं होगा। चिड़ियाँ चुग के ले जाएंगी, अंकुरित नहीं होंगें वो। इस घांस में दाना गिरा दो तो चिड़िया चुन जाएंगी, चीटी लें जायेगीं, चूहे खा जायेंगे और कोई हजार दाने डालो तो 2–4 दाने उग जायें तो उग जाएँ । दुरितानी (दुर्गुण) बहुत भरे पड़े हैं तो भद्रम (अच्छे गुण) कैसे आएंगें।

सूक्ष्मता से आप निरीक्षण करके देखें। इतने सटीक, प्रमाणिक, सरल और स्पष्ट सिद्धांत ईश्वर ने हमारे सामने रख दिए हैं। गणित की तरह दो और दो चार, दो में एक घटा एक। बिल्कुल ऐसे उदाहरण हैं। कैसी बात लिखी है कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, बह्मचर्य , ईश्वर प्रणिधान बराबर सुख, शांति, निर्भीकता, आनंद, तृप्ति, संतोष, स्वतंत्रता । ये गणित ही तो है और क्या। जिनमें ये गुण मौजूद होंगे, वहां सुख–शांति होगी। कोई भोग भोगने की जरूरत नहीं है। न कोई पूजा, न कोई नारियल, न कोई माला, न कोई ताबीज, कुछ भी नहीं। अहिंसा, सत्य आदि इन चीजों को अपनाओ और सीधा सुख पाओ। इस प्रकार सुख हमारे अपने हाथ में है।

ध्यान दीजिए, निश्चित रूप से आप प्रयोग करके देख सकते हैं । मेरे पर प्रयोग किया हुआ है, करता रहता हूँ। आप आज संकल्प कर लीजिए कि कल मुझे दिन भर सुखी रहना है, आनंदित रहना है, मेरे को दुःखी होना नहीं है, भयभीत होना नहीं है, झूठ बोलना नहीं है, छल कपट करना नहीं है, अन्याय करना नहीं है, इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होना नहीं है, वाह्य वृत्ति करनी नहीं है। कल मैं गंभीर रहूँगा, मैं शांत रहूँगा, मैं हसूंगा नहीं, मजाक नहीं करूंगा, आलस्य–प्रमाद नहीं करूंगा, ठीक समय में खाना खाउँगा, ठीक समय पर उठूँगा, ठीक समय में सारे क्रिया–कलाप करूंगा। आप ऐसा संकल्प करके चलिये। सतर्क और सावधान रहिये। आप खुद देखेंगे कि एक दिन में कितना प्रभाव पड़ गया। रात्रि के समय ऐसी अनुभूति होगी– वाह, कितना अच्छा दिन बिताया मैंने। मन में कोई भी वितर्क नहीं, कोई झूठ नहीं, कोई निन्दा नहीं, कोई हंसी–मजाक नहीं, सब इन्द्रियों पर संयम, कोई आलस्य नहीं, कोई प्रमाद नहीं, कोई भय नहीं, कोई आशंका नहीं, कोई दुर्भावना नहीं। जब सोयेंगे तब ऐसा लगेगा कि आज मैंने कितना मूल्यवान दिन प्राप्त किया है। व्यक्ति को लगता है कि आज मुझे कुछ उपलब्धि प्राप्त हुई । उसे लगता है कि आज मैंने 18 घंटे कुछ किया है, कुछ प्राप्त किया है। तब उसके संस्कार इतने तीव्र बनते हैं, जिसकी हम कल्पना नहीं कर सकते।

तात्पर्य है कि अगर हम एक दिन 18 घण्टे पूरे संयम करके किन्ही भी वितर्कों को न उठायें, शांत, प्रसन्न, संतुष्ट, सुखी और निर्भीक बनकर के रहें, तो इस स्थिति के संस्कार इतने तीव्र होते हैं कि अगले दिन आपको इस स्थिति को बनाने के लिए उतना पुरूषार्थ नहीं करना पड़ेगा। आगे बहुत कम करना पड़ेगा और आगे चलकर यह स्वाभाविक बन जायेगा। फिर आगे जो भी कार्य करेंगे, बिना वितर्क के, बिना भय के, बिना आशंका के स्वभाव से करते रहेंगे। सब कुछ हमारे हाथ में है।

आप सूक्ष्मता से आत्म– निरीक्षण करके देखेंगे तो पता लगेगा की आज के दिन के कितने मिनिट, कितने घण्टे हमने अच्छे कार्य में व्यतीत किये।

मानसिक शक्तियों का, वाणी का ठीक प्रकार से कितना उपयोग किया। कितना स्वाध्याय किया। इसी प्रकार आत्म–निरीक्षण से ही पता चलेगा कि हमने निष्काम भावना से शरीर से कितना काम किया। आत्म–निरीक्षण के कई क्षेत्र हैं, जैसे – अध्ययन है, उपासना है, व्यवहार है, व्यायाम है, सेवा है, श्रम है, व्यवसाय है। हर क्षेत्र के अन्दर हमें आत्मनिरीक्षण करना चाहिये।

भूमिका– बिना गुरू, ज्ञान नहीं। ईश्वर के अलावा गुरू के आसन पर और कौन बैठ सकता है,आचार्यवर बताते हैं:–

(32) मैं ही अपना गुरू हूँ।

स्वामी दयानंद ने यह बात कही है कि मनुष्य का आत्मा सत्य–असत्य को जानने वाला है। हम प्रत्येक क्षण अपने द्वारा किये अधर्म को, पाप को, अन्याय को, पक्षपात को, चोरी आदि यम–नियम के विरूद्ध आचरण को पता लगा सकते हैं। **न केवल शारीरिक, न केवल वाचनिक बल्कि अपने मानसिक आचरण में की जा रही त्रुटियों का भी हम पता लगा सकते हैं।** शर्त केवल यही है कि हमें सतर्क और सावधान रहना होगा। यदि हम सतर्क और सावधान रहें तो उस समय पता न लगा सकें तो कम से कम काम करने के बाद जरूर लगा सकते हैं। अगर बुद्धिमान व्यक्ति इस विषय में चिंतन करें, थोड़ा समय लगायें तो वह अपने अंदर मौजूद एक–एक दोष का पता कर सकता है। **आत्मनिरीक्षण, निदिध्यासन हमारे पास में इतना बड़ा हथियार है कि जिसके माध्यम से हम अपनी कमी ढूँढ़ सकते हैं और नये गुणों को अपने जीवन में ला सकते हैं।** हम स्वयं ही अपने बहुत बड़े गुरू हैं। ईश्वर के साथ सम्पर्क नहीं हुआ है, फिर भी ईश्वर का ज्ञान–विज्ञान हमारे पास में है। उसको गुरू मानकर के, वेदों को पढ़कर के हम अपने जीवन का उद्धार कर सकते हैं। जब तक ईश्वर गुरू नहीं बनता है, समाधि नहीं लगती है, तब तक शब्द प्रमाण से, अनुमान प्रमाण से हम अपने जीवन का उद्धार कर सकते हैं।

कमाल की बात यही है कि ईश्वर को छोड़कर के जीवात्मा का स्वयं

का आत्मा जो है, वो मित्र है। यहाँ स्वयं का आत्मा का मतलब क्या लेंगे? हम अपनी आत्मा से अलग नहीं हैं। हमारी आत्मा में ईश्वर–प्रदत्त, ऋषि–प्रदत्त ज्ञान विज्ञान जो कि संस्कार रूप में बना हुआ है, वह ही हमारा परम मित्र है। उसको हम ठीक प्रकार से जानकर के, उसके अनुसार अपने जीवन को चला करके, अपने जीवन को श्रेष्ठ और महान बना सकते हैं।

भूमिका–प्रश्नों के आधार पर हमें प्रश्नोपनिषद, कठोपनिषद और केनोपनिषद प्राप्त हुए। प्रश्न करते–करते नचिकेता विद्वान बन गया। प्रश्नों की महिमा न्यारी है। आचार्यवर कहते हैं–

(33) खुद से प्रश्न करो।

आध्यात्मिक व्यक्ति का जीवन, व्यवहार, विचार और सिद्धांत किस प्रकार के होते हैं, इस विषय पर हम विचार कर रहे हैं। शास्त्रों के माध्यम से इस बात का परिज्ञान होता है कि आध्यात्मिक व्यक्ति को अध्यात्म के विषय में ही अपने मन में प्रश्न उत्पन्न करने चाहिए और उनका उत्तर ढूंढना चाहिए। मन में प्रश्न करना और उसके उत्तर को ढूंढना, इस शैली से व्यक्ति आध्यात्मिक मार्ग पर बढ़ता है, दौड़ता है और प्रगति को प्राप्त करता है। जब तक व्यक्ति स्वयं अपने आपको अंदर से नहीं झांकता है और अपने आप से इस विषय में प्रश्न नहीं करता है, तब तक व्यक्ति आध्यात्मिक मार्ग में प्रगति नहीं कर सकता। **हम जो पढ़ते हैं, सुनते हैं, देखते हैं या अनुमान लगातें हैं, उन सिद्धांतों को हम कितना मानते हैं, इस विषय की सच्चाई का पता तभी हमको लगती है, जब हम इस विषय में स्वयं प्रश्न करते हैं, अन्यथा नहीं।**

भूमिका–व्यवहार वह दर्पण है जिसमें व्यक्ति का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। इसलिए कहा जाता है कि तुम दूसरों के साथ वैसा व्यवहार मत करो, जैसा तुम अपने प्रति पसंद नहीं करते। अपने व्यवहार की शुद्धि हेतु आचार्यवर कहते हैं कि:–

(34) अपने व्यवहार के विषय में प्रश्न उपस्थित करें।

क्या मेरे व्यवहार से दूसरे व्यक्ति दुःखी तो नहीं हैं, क्या मैं औरों के बीच स्वार्थ को प्रधानता देता हूँ या परोपकार को प्रधानता देता हूँ। क्या मैं कार्यो को निष्काम भावना से करता हूँ अथवा सकामता से करता हूँ । क्या वास्तव में ईश्वर की प्राप्ति का लक्ष्य मैंने बना लिया है अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का, समाधि ा लगाने का मेरा लक्ष्य है? क्या वास्तव में मैं ऋषियों और ऋषियों के सिद्धांतों, जो मैंने अब तक पढ़े हैं, उनके ऊपर चलने का पूरा प्रयास करता हूँ । व्यवहार के संबंध में ऐसे कई प्रकार के प्रश्न पूछ सकते हैं। इन प्रश्नों को उठाकर के अपने आप से इनका समाधान ढूँढना चाहिये।

(35) अपने स्तर का परीक्षण करें।

प्रिय ब्रह्म्चारियों,मैं जानबूझकर इन लाभदायक क्रियाओं को अपने जीवन में प्रयोग करता रहता हूँ। आपका मुझे पता नहीं कि आप इन बातों का परीक्षण करते हैं कि नहीं। मैं तो अपने और आपके स्तर का परीक्षण कर लेता हूँ। तत्काल आपको किसी कार्य में नियुक्त करता हूँ या प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करता हूँ, जैसे आज यह करो, आज ऐसा न करो और फिर आपकी प्रतिक्रिया का परीक्षण करता हूँ। आप भी अपना परीक्षण खुद कर सकते हैं। इन परीक्षणों का उदाहरण दे रहा हूँ। जैसे आप सभी भोजन करने जा रहे हैं और मैंने आप में से किसी को बुलाया और यह कहा कि आपने कल इस प्रकार की भूल कर दी थी अथवा यह एक छोटा सा कार्य था, मगर यह कार्य आपने नहीं किया। आप कहेंगे– हाँ नहीं किया । मैंने पूछा – क्यों नहीं किया आपने, और आप उचित उत्तर नही दे सके। तब मैंने इस कार्य के महत्त्व संबंधी 2–4 बातें आपको बताई और कह दिया कि आपको आज भोजन नहीं करना है। अब मुझे तो उस आदमी का परीक्षण करना था कि ऐसी स्थिति आने पर वह क्या प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। आप बताये कि आप खुद इस तरह का आत्मनिरीक्षण करते हैं या नहीं करते हैं कि मुझ पर क्या प्रभाव पड़ा।

याद रखें कि प्रायः ऐसा अवसर घर में नहीं मिलता है, गुरूकुल में भी नहीं मिलता है। आध्यात्मिक गुरू ही इस प्रकार की क्रियाओं को करा सकता

है। स्वयं व्यक्ति कभी चाहे तो इस प्रकार की क्रियाओं को कर सकता है। लेकिन इस प्रकार का कार्य, इस कार्य को विवेचनापूर्वक समझने वाला व्यक्ति ही कर सकता है। इसे सामान्य व्यक्ति नहीं कर सकता। जैसे– आपसे कहें कि आज आपको सोना नही है, आज आपको केवल रोटी और छाछ खाना है या केवल नमक के साथ रोटी खाना है, आज आपको भोजन नही करना है, अपने सब काम छोड़कर अभी तत्काल अहमदाबाद जाइये आप।

जब भी ऐसी प्रतिकूलताएं आएं, तत्काल ये विचार करना चाहिए कि मुझे अपने आध्यात्मिक स्तर का परीक्षण करने के लिए बहुत बड़ा अवसर मिल गया है। अब मै अपना आत्मनिरीक्षण करूँगा कि इसमें मैं उत्तीर्ण होता हूँ कि अनुत्तीर्ण होता हूँ। इतना विचारते ही कठिन से कठिन कार्य सरल हो जायेगा। बल्कि विचार करेंगे कि ये तो कार्य करने योग्य था और मुझे इसका अवसर आज मिला है। मैं आज प्रसन्नतापूर्वक इस कार्य को करूँगा।

जब व्यक्ति इस प्रकार से विचार नहीं करेगा तो कहेगा कि– ओहो, क्या हो गया, मारे गये हम तो। आज तो 10,11,12 बजे रात तक जागना पड़ेगा। इतना सारा कष्ट झेलना पड़ेगा। दोपहर में सोने को मुझे मिला नहीं था। सुबह भी जल्दी उठना है। यह सोचकर वह दूसरे पर द्वेष करेगा। मेरे प्रति भी द्वेष उत्पन्न हो सकता है। कोई यह भी कह सकता है– दूसरे व्यक्ति को ऐसा क्यों नहीं कहा, मुझसे क्यों कहा। दुःखी होकर उसने किसी से इस बारे में पूछा तो पता चला कि दूसरा व्यक्ति बीमार हो गया था। इस समय वह यह विचारेगा कि उस बेकार आदमी को इस समय ही बीमार होना था। इस प्रकार लौकिक व्यक्ति जहाँ प्रतिकूलतायें आती हैं, वहां उनके प्रति मन में खिन्नता, द्वेष, वितर्क आदि की भावना उत्पन्न करता है। आध्यात्मिक आदमी जो जब जैसा कार्य कहा जाता है, वह तत्काल प्रसन्नता से उस कार्य को यह मानकर करता है कि– ये मेरा परीक्षण है।

ध्यान दीजिये, जो व्यक्ति जितने लंबे काल तक माता–पिता के, गुरू के, परिवार के, घर के, वेद के, ईश्वर के और अपने आप के अनुशासन में

चलेगा, वो उतना सशक्त हो जायेगा। **अनुशासन में चलते–चलते–चलते इतनी योग्यता और सहनशीलता बन जाती है कि एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं, चार नहीं, पाँच नहीं, दस नहीं, बीस नहीं बल्कि पचास प्रतिकूलताएँ सामने क्यों न हों, व्यक्ति अपना धैर्य नहीं खोता।** चाहे उसका हर तरफ से विरोध हो रहा है या सारा काम बिगड़ रहा है। आप देखेंगे कि काम बिगड़ने पर कुछ लोग कहते हैं कि मेरा तो सब काम बिगड़ गया, सारा चौपट हो गया। वे दुःखी होकर बैठ जाते हैं। आध्यात्मिक स्तर का व्यक्ति, सारे लौकिक काम ही क्यों न बिगड़ जायें, तो भी दुःखी नहीं होता। वह तब भी शांत, प्रसन्न, संतुष्ट और सुखी रहता है। उसकी कसौटी है ये।

जिसका जितना स्तर है, उसी के *ऊँचे* स्तर से मैं उसका परीक्षण करता हूँ। सामान्य स्तर से नहीं। किसी व्यक्ति का स्तर तीसरे स्तर का है तो उस पर चौथे स्तर पर प्रयोग किया जायेगा। किसी का चौथा स्तर है तो उसका पाँचवा स्तर का प्रयोग किया जायेगा। केवल मैं परीक्षण नहीं करता हूँ, आपका परीक्षण होता ही रहता है। एक–दूसरे के साथ में रह रहा हर व्यक्ति एक दूसरे के गुणों का परीक्षण कर लेता है। वो प्रतिकूलता उपस्थित कर ही देता है। पता नहीं होता तो सब एक दूसरे के लिए प्रतिकूलता उत्पन्न कर देते हैं। अज्ञान से, भूल से, शीघ्रता में या किसी कारणवश लोग असत्य है, क्रोध है, हिंसा है, द्वेष है या और अनेक प्रकार की बाधा है, कठिनाई है, आदि–आदि प्रतिकूल स्थितियों को सामने उपस्थित कर ही देते हैं। सामान्य परीक्षाओं में जो व्यक्ति फेल हो जाता है तो आगे जो बहुत भयंकर मानसिक और सामाजिक स्तर की प्रतिकूलताएं आती हैं, उसमें भी व्यक्ति फेल हो जाता है।

ध्यान दीजिये– लौकिक व्यक्ति की अपेक्षा, यहाँ आश्रम में अधिक अनुकूलता है। लौकिक व्यक्तियों को अपने परिवार से, बच्चों–बच्चियों से कुछ भी आंतरिक सुख नहीं मिलता। वे अपने स्वार्थ, अभिमान व उल्टी मान्यताओं के वशीभूत होकर हमारे आध्यात्मिक स्तर को गिरायेंगे,हमें दुःखी करेंगे हमारे अंदर द्वेष (क्रोध) को उत्पन्न करेंगे, राग को उत्पन्न करेंगे, वितर्क मन में

उत्पन्न करेंगे। उनका स्तर तो गिरा है और वे अपने संग से दूसरे के स्तर को भी गिरायेंगे। मैं निश्चित रूप से कहता हूँ कि जो व्यक्ति आश्रम में रहेगा तो यहाँ उसकी शारीरिक, मानसिक, आत्मिक और बौद्धिक उन्नति होगी । इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति यहाँ नहीं रहेगा, चाहे उसको उसे घर के अंदर बढ़िया खाने को दे दें, खूब अच्छा बिस्तर मिल जाये, एयरकंडीशन में सोए, गाड़ियों में घूमें, इससे आत्मिक उन्नति नहीं होगी। उसे ज्ञान–विज्ञान नहीं मिलेगा, आत्मनिरीक्षण करने का अवसर नहीं मिलेगा, शांत और पवित्र वातावरण नहीं मिलेगा। फिर वह परेशान होकर लौट के आश्रम में आयेगा। घर में रहने के दृढ़ संस्कार बने हैं इसलिए वह फिर वापिस घर जायेगा। मैं तो स्पष्ट कहता हूँ कि वह जानकर पाप कर रहा है, अधर्म कर रहा है। वह अधर में है। वह जान रहा है कि ये कुंआ है फिर भी वह लौट–लौट के घर जा रहा है। अब अंधा आदमी गिरे तो बात समझ में आती है लेकिन आँखों वाला व्यक्ति भी गिर रहा है।

जिनके जीवन के 50 वर्ष, 60 वर्ष होने को है। उनका तो कार्य अध्ययन, स्वाध्याय और आत्मचिंतन करने का है। ब्रह्मचर्य काल में गुरूकुल में गये नहीं, अध्ययन किया नहीं, संस्कृत पढ़ी नहीं, अब फिर घर परिवार में जा रहा है, फिर वहीं जा रहा है। समझ में ही नहीं आ रहा है कि घर परिवार में कुछ सार नहीं है। इन सबसे कुछ नहीं मिलेगा। इन व्यक्तियों को पकड़ में नहीं आता कि मैं घर–परिवार में जा रहा हूँ, वहां मेरा स्तर नीचे गिर गया है। यह गिरा हुआ स्तर मेरे दुःखों को और बढ़ा रहा है।

(36) हमारा स्तर सांप–सीढ़ी के खेल की तरह बदलता है।

सांप–सीढ़ी खेली है न। कोई दो चार अंक आगे बढ़ते–बढ़ते 70–80 में आयेगा, फिर सांप खायेगा और वापस नीचे आ जायेगा। ठीक वैसे ही यहाँ आश्रम में घटित होगा। आदमी 2–4 महीने आश्रम में रहेगा और विचारेगा कि– हाँ, अब तो ध्यान भी लगने लगा है, कुछ मजा भी आने लगा है, स्वास्थ्य

भी ठीक है, हवा भी ठीक है, सब कुछ ठीक है। फिर वो करते–करते वापस घर–परिवार में जाने की गलती करेगा यानी कि सांप के मुँह में गिर जायेगा। ये ही तो स्थिती है, इन लोगों की नीचे गिरने की। और फिर वही वापस पुरानी निम्न स्तरीय मानसिक स्थिती बन जायेगी। घर–परिवार में 2–4 दिन में ही दिखाई देगा कि यहां तो मर गये। इसलिए फिर वह वापस आश्रम आयेगा। फिर यहां 10 दिन रहकर घर से मिलने वाले दुःख और अज्ञान को भूल जायेगा और वापिस घर चला जायेगा।

आदमी समझता ही नहीं है। यह भी नहीं समझता व्यक्ति कि मेरा कर्तव्य क्या है, अकर्तव्य क्या है। क्या करना चाहिए, क्या नहीं। मुझे किसमें लाभ है, किसमें हानि है? जिन कार्यो को करने का न अधिकार है, न कर्त्तव्य है, न उसका कोई संबंध है, व्यक्ति उन कार्यो को करता है । जिन कार्यो को करने का परम कर्त्तव्य है, वह उनको नहीं करता है।

(37) अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए व्यक्ति स्वयं जिम्मेदार है।

सच्चे मन से अपने आप को देखना चाहिए। ये प्रश्न निदिध्यासन के काल में उठाये जाते हैं। इन विषयों पर निदिध्यासन करना चाहिये। इसको करने से व्यक्ति को अपनी परिपक्वता का ज्ञान होता है। आध्यात्मिक उन्नति के लिये व्यक्ति प्रश्नपत्र स्वयं ही बनाता है, उसका उत्तर भी स्वयं देता है, परीक्षक भी स्वयं ही होता है और अंक भी स्वयं देता है। अंकों का परिणाम भी स्वयं ही उस व्यक्ति को सुख–दुःख के रूप में प्राप्त होता है। अतः आध्यात्मिक उन्नति के लिए व्यक्ति स्वयं ही जिम्मेदार है। आत्मा अपने आप की उन्नति करने में सबसे बड़ा सहायक है।

यद्यपि परोक्ष रूप से ईश्वर हमको साधनों को देता है, वह सबसे प्रमुख सहायक है, लेकिन ईश्वर की सहायता तब व्यक्ति को प्राप्त होती है, जब वह सिद्धातों का पालन करने के लिए अपने मन में संकल्प करे, इच्छा उत्पन्न करे। ईश्वर के ज्ञान–विज्ञान आदि साधन तो हर व्यक्ति को उपलब्ध

ा हैं, लेकिन उनसे लाभ वो ले पाता है, जो स्वयं मन के अंदर संकल्प, तपस्या आदि को करता है। ऐसे व्यक्ति को अपने मन में इस प्रकार के प्रश्नों को उत्पन्न करना चाहिये, और उत्तर खुद ढूंढ़ना चाहिये। सही–सही उत्तर आने पर व्यक्ति को प्रेरणा मिलती है, विवेक, वैराग्य उत्पन्न होता है और व्यक्ति आगे बढ़ता है। आध्यात्मिक व्यक्ति के लिए अपने जीवन को आगे बढ़ाने का एक बहुत बड़ा साधन है–अपने आप से प्रश्न करना और उसके सही उत्तर को ढूँढ़ना और जहाँ कमी हो, त्रुटि हो, वहाँ उनको दूर करने का प्रयास करना।

भूमिका– अनिश्चित्ता के झूले में झूलना खतरनाक है। संशय के कारण व्यक्ति कार्य में प्रवृत्त ही नहीं हो पाता है। आचार्यवर कहते हैं:–

(38) एक ही विषय में परस्पर विरूद्ध विचार प्रगति अवरूद्ध करते हैं।

जीवन पथ पर चलते हुये प्रत्येक दिन व्यक्ति के समक्ष एक ही विषय में दो विरूद्ध विचार उत्पन्न होते हैं। ये बात सत्य है, ये बात असत्य है, ये न्याय है अथवा ये अन्याय है, ये कर्त्तव्य है अथवा अकर्त्तव्य है, ये उपादेय है या हेय है, ये लाभकारी है अथवा हानिकारक है, ये हिंसायुक्त है अथवा अहिंसायुक्त है, इत्यादि किस्म के विचार उत्पन्न होते हैं। इसको हम दार्शनिक परिभाषा में **गुण वृत्ति विरोध** के नाम से जानते हैं। यह ऐसी स्थिती है जिसके अंदर क्रिया और गुण के विषय में व्यक्ति ठीक प्रकार जानता नहीं है। अथवा तो उस विषय में अज्ञान है अथवा मिथ्या ज्ञान है अथवा संशय है। ये तीन प्रकार की परिस्थितियां मन में होती हैं। चौथी चीज–अपरिपक्व ज्ञान को भी हम शामिल कर सकते हैं। किसी व्यक्ति, किसी क्रिया, किसी वस्तु, किसी सिद्धांत के विषय में जब अज्ञान होता है अथवा मिथ्या ज्ञान होता है, अथवा संशय बना होता है, अथवा यथार्थ ज्ञान होने पर भी वो परिपक्व नहीं होता है, अर्थात् अपरिपक्व होता है, तब तक व्यक्ति के मन में उस व्यक्ति, क्रिया, घटना, पदार्थ आदि के विषय में ठीक प्रकार से श्रद्धा, निष्ठा, विश्वास, रुचि, और प्रेम उत्पन्न नहीं होता। जब तक पूर्ण श्रद्धा, पूर्ण विश्वास, पूर्ण रुचि, पूर्ण निष्ठा

और समर्पण उत्पन्न नहीं होता है, तब तक व्यक्ति उस वस्तु को प्राप्त करने, उसको स्वीकार करने अथवा उसको समझने, जानने और उसको क्रियान्वित करने के लिए पूर्ण रूप से अग्रसर नहीं होता है।

हम अपनी दिनचर्या में बीसों प्रकार के कार्यों को करते हैं। उनके विषय में अनेक बार दो किस्म के विचार उठते हैं। उदाहरण के लिए सुबह चार बजे उठना चाहिए अथवा नहीं। ऐसे ही भोजन के विषय में प्रश्न उठेगा कि इस समय करना चाहिए या इतने समय में करना चाहिए। वस्त्रों के विषय में भी इसी प्रकार के प्रश्न उठते हैं। जहाँ–जहाँ व्यक्ति के व्यवहार में कोई सिद्धांत रूप में वस्तु, व्यक्ति, क्रिया उपस्थित होती है तो जिस विषय के संबंध में निश्चयात्मक परिपक्व दृढ़ात्मक ज्ञान नहीं है, तब तक व्यक्ति के मन में मौजूद अपरिपक्व ज्ञान, उसको विचलित करता रहता है, उसको भ्रमित करता है, संशयित करता है अथवा उसको मूढ़ अवस्था में बनाये रखता है। परिणाम यह निकलता है कि अपरिपक्व ज्ञान वाला व्यक्ति अपने जीवन को सही तरीके से नहीं चला पाता है, लक्ष्य की प्राप्ति गतिपूर्वक नहीं कर पाता है, प्रसन्नता पूर्वक संतोष पूर्वक लक्ष्य नहीं प्राप्त कर पाता है।

भूमिका– विद्वता संयमी बनाती है, कष्ट में सहयोगी होती है। विद्वान सर्वत्र पूजा जाता है, इसलिए आचार्यवर कहते हैं:–

(39) विद्वान की कीमत होती है।

किसी स्वर्ण आभूषण में माणिक लगा दो तो उसकी कीमत 10 गुना, 20 गुना या 50 गुना अधिक हो जायेगी। ऐसे ही आप ब्राह्मण हैं, आप तपस्वी हैं, आप त्यागी हैं, आप विनम्र हैं, आप सरल हैं, आप ईश्वर भक्त हैं, आप सेवा–भावी हैं लेकिन यदि आप विद्वान नहीं हैं, आपको मंत्र, श्लोक, सूत्र अच्छी प्रकार याद नहीं हैं, तो आप स्वर्ण आभूषण तो हैं, लेकिन रत्नाभूषण नहीं हैं। रत्न आभूषण की कीमत स्वर्ण आभूषण से 50 गुना अधिक होती है। ब्राह्म्ण तो हैं आप, लेकिन मंत्र याद नहीं। ध्यान दीजिये समाज में, राष्ट्र

में, वक्ता हो, प्रवक्ता हो, लेखक हो, चर्चा करने वाला हो, अध्यापक हो, कोई भी हो, उसको जितने अधिक मंत्र–सूत्र–श्लोक याद होंगे वह उतना ही प्रवीण होगा, वह उतना ही कुशल होगा।

भूमिका– किसी के अधीन होना, उसके नियमों या व्यवस्था में चलना, उसके अनुशासन में रहना कहलाता है। ऐसे अनुशासित व्यक्ति के बारे में आचार्यवर कहते हैं कि:–

(40) स्वयं अनुशासित ही दूसरों को अनुशासन में रख सकता है।

ध्यान दीजिये, गुरूकुलीय शिक्षा प्रणाली में अनुशासन में रहना एक बहुत–बड़ा गुण माना जाता है। किसी भी व्यक्ति के प्रति पूर्ण समर्पित होकर के आप 2 महीना, 4 महीना, 6 महीना भी रह लेंगे, जैसा वह कहे, जैसा वह विचारे, जैसा वह आपको निर्देश करे, उसी प्रकार चल लेंगे तो आप में योग्यता उत्पन्न हो जाएगी। ऋषि लोग संपूर्ण समाज को प्रेरणा देते हैं, अपने पीछे लगा लेते हैं। इसके पीछे कारण यह है कि वे पूर्ण रूप से ईश्वर को समर्पित होकर के चलते हैं। ऋषियों के समर्पित होकर के विद्वान लोग चलते हैं, और अन्य कार्यकर्ता अपने निर्देशकों के, महापुरूषों के अनुकूल होकर के चलते हैं।

इस विषय में नियम यह है कि जो स्वयं किसी के समर्पित होकर के अनुशासन में पूर्ण आज्ञा में चल रहा है, वही व्यक्ति दूसरे को पूर्ण आज्ञा में समर्पित होकर के चला सकता है। जो स्वयं स्वच्छंद है, वह दूसरों को अपने अधीन चला नहीं सकता। उसमें ऐसी शक्ति नहीं आयेगी, बल नहीं आयेगा, निष्कामता नहीं आयेगी, प्रबलता नहीं आयेगी कि वह दूसरों को कुछ बता सके और उनको सही मार्ग में ला सके।

भूमिका– ईश्वर–विश्वास आगे बढ़ने और मंजिल पर पहुँचने के लिए आवश्यक है। आस्तिक ईश्वर से शक्ति प्राप्त करता है, इसलिए आचार्यवर कहते हैं:–

(41) आस्तिक बहुत कुछ कर सकता है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में भी एक बात देखने में आती है। कोई व्यक्ति ईश्वर को ठीक जानता है, समझता है, व्याख्या करता है, लिखता है और उसके विषय में विचार करता है या बातचीत करता है। ईश्वर के विषय में इतना जानकर भी उसके पास शक्ति नहीं है, बल नहीं है, त्याग नहीं है, तपस्या नहीं है, संगठन नहीं है तो इसका मतलब है कि वह ईश्वर को जानता ही नहीं है। ईश्वर को जानने वाले 11 व्यक्ति मिलकर संसार में तूफान मचा सकते हैं। एक हजार व्यक्ति की जरूरत नहीं है। मात्र 11 व्यक्ति ही बहुत हैं। स्वामी सत्यपति जी कहते हैं कि – **एक विचार वाले 11 व्यक्ति मिल जायें तो संसार में तूफान मचा दें।** ऐसा मेरा विश्वास है कि सच्चे ईश्वर को जानने वाले, मानने वाले, मन में विश्वास रखने वाले व्यक्ति के मन में ऐसी भावनाएँ, ऐसे विचार, ऐसे वृत–संकल्प होते हैं, ऐसी इनकी शैली होती है, ऐसे इनके व्यवहार होते हैं, ऐसा इनका प्रभाव होता है कि हजारों व्यक्ति उनसे प्रभावित होते हैं। सार यही है कि– हम सच्चे ईश्वर को जानें और साथ–साथ में आत्म–निरीक्षण के माध्यम से जो आध्यात्मिक बाधायें बनी हुई हैं, उन बाधाओं को जानकर के उनको दूर करने का प्रयास करें।

भूमिका– कहने वाला किस उददे्श्य से बात कह रहा है, बिना यह जाने काम शुरू करेंगे तो असफल होंगें, इसलिए आचार्यवर कह रहे हैं कि–

(42) बात के तात्पर्य को समझें।

व्यवहार के विषय में देखता हूँ कि कई व्यक्ति वक्ता के तात्पर्य को नहीं समझते। **वक्ता क्या कह रहा है, समझ में नहीं आता है तो व्यक्ति को पूछना चाहिए।** पूछने का तरीका होना चाहिए। विदेशों में मैंने बहुत चीजें सीखी है। विदेशों में यह नहीं कहते हैं कि दुबारा बताईये, बल्कि ''सॉरी'' कहते हैं। ''सॉरी'' का मतलब है कि मैं आपके भाव को, तात्पर्य को, वाक्य को समझ नहीं पाया हूँ। मुझे दोबारा बताईये। सॉरी का मतलब क्षमा करना नहीं हैं। वताने बाला रिपीट करता है। प्रायः व्यक्ति जो उससे कह रहा है, उसके उददे्श्य या भाव पर ध्यान देता ही नहीं है, कहां जाना है, किसके पास

जाना है, क्या लाना है, कितना लाना है। इसी प्रकार बता भी नहीं पाता।

बताने वाले को स्पष्ट बताना चाहिये। आपको यह चीज देखनी है तो विवेक–भूषण जी को देखिये। हर बात को स्पष्ट समझाना और स्पष्ट समझना। स्वामी जी को देखिये। पूरी बात धीरे–धीरे स्पष्ट रूप में समझायेंगे। अच्छी प्रकार से एक–एक बात समझा देंगे। एक बार नहीं, दो बार नहीं, तीन बार नहीं, चार बार समझा देंगे उसको और समझेंगे भी। सारी बात एक बार, दो बार, तीन बार, चार बार पूछेंगे। स्वामी जी से बात करने में यहाँ पर कई लोग असमर्थ हैं। उन्हें न तो बोलना आता है, न तो शब्दों का ज्ञान है। स्वामी जी तो पकड़ लेंगे कि बोलना नहीं आता। शनै–शनै बोलना, स्पष्ट बोलना और ऊंचे स्वर से बोलना स्वामी जी की विशेषता है। हाँ, जिन व्यक्तियों का परस्पर संबंध ऐसा है कि वह संकेत में समझता है तो समझ जायेंगे। जैसे आपस में जिनका व्यवहार होता है, उसे नया व्यक्ति समझ नहीं पाता है। व्यवहार के विषय में आप सतर्क और सावधान रहें।

यहाँ एक मूलभूत त्रुटि हो रही है। ध्यान दीजिये, आज समाज के अंदर, गुरुकुल में पढ़े हुए बह्मचारी को चाहे, वह शास्त्री है, उपदेशक है, चाहे सन्यासी है, चाहे विद्वान है, चाहे कुछ भी है, उसको लोग व्यवहारहीन मानते हैं। सारी बातें उसकी ठीक नहीं मानते हैं। अब जो कपड़े हम पहनते हैं उसे वे अव्यवहारिक मानें तो इसका मतलब उनका दोष है, हमारा दोष नहीं है। यह ऋषियों की शैली है, वे कटी–वस्त्र (धोती) पहनते हैं। पैंट शर्ट न पहनने से व्यवहारहीन है, ऐसा नहीं मानना चाहिए। लेकिन बोलने में, समझाने में, समझने में, व्यवहार करने में जो भूलें होती हैं। उन भूलों को पहचान कर उन्हे दूर करते रहना चाहिए।

भूमिका–कार्यदान से आत्मा को आनंद, प्रभाव और सम्मान प्राप्त होता है इसलिए कहते हैं कि– 'कर सेवा तो खा मेवा'। सेवाभाव को जगा लिया तो काफी कुछ अपने आप ठीक हो जायेगा। आचार्यवर कहते हैं:–

(43) श्रमदान करें।

स्वेच्छा से किसी दूसरे के कार्य को करने के लिए अधिकांश व्यक्ति तैयार नहीं हैं। कहने पर भी कोई कार्य करेगा तो बिना मन के करेगा,अपनी तरफ से पूछने की बात तो दूर रही। मैं आपसे प्रश्न करता हूँ, आपमें से कितने ऐसे ब्रह्म्चारी हैं जो अन्य ब्रह्म्चारी के पास में जाकर के दिन में एक बार या दो बार कहते हों कि आपका कोई कार्य हो, कोई अधिक कार्य हो तो मुझे बताइये, मैं करने के लिए तैयार हूँ। सभी विद्यालयों में,गुरूकुलों में यही स्थिति देखने को मिलती है। ऐसे लोग आध्यात्मिक क्षेत्र में शून्य हैं।

प्रायः व्यक्ति समझता है कि मैं जो कार्य कर रहा हूँ, वह बहुत–बड़ा कार्य है। यह मिथ्याभ्राँति है। जो–जो कार्य कर रहे हैं, सबके सब महत्वपूर्ण कार्य हैं। कम्प्यूटर पर कार्य करने वाला विचार करता है कि मैं तीसरी मंजिल पर जाकर के बैठ गया हूँ, सबसे बढ़िया कार्य मेरा है। यज्ञ की लकड़ी काटने वाला विचार करे कि यह कम्प्यूटर वाले क्या काम कर रहे हैं, कुछ भी नहीं कर रहे हैं। मेरा काम सबसे बड़ा है। इस प्रकार हिसाब रखने का काम है, दूध का काम है, घी का काम है, बाहर का काम है, अनेक प्रकार के काम हैं। सबके काम के अलग–अलग महत्व हैं। इन सब कार्यो को करने के साथ व्यवहार–कुशलता, विनम्रता, प्रेम और श्रद्धा समाप्त नहीं होनी चाहिए। हाँ, कहीं आग लग रही है, बहुत तीव्रता (अर्जेनसी) की बात है तो वह एक अलग बात है।

भूमिका– पारस्परिक सहयोग या सहभागिता से कार्य तेजी से होता है। कार्य में मद्द करने से परस्पर प्रेम बढ़ता है, इसलिए आचार्यवर कहते हैं:–

(44) मिलके काम करें।

स्वागत कक्ष के अंदर आये 5 आदमियों के लिए शरबत बनाकर के लाना है और इस काम में अगर आप 15 मिनिट लगायेंगे तो यह व्यवहारहीनता कहलाएगी। नाश्ता देने में आप 15 मिनिट लगा देंगे, जबकि 5 आदमियों के शरबत बनाने में 5 मिनिट से ज्यादा लगेंगे नहीं। यदि 2 व्यक्ति होंगे तो

उसमें और कम समय लगेगा, 3 होंगे तो और कम समय लगेगा।

परस्पर प्रेम नहीं होने के कारण, व्यक्ति न तो किसी से सहायता लेता है, न किसी को सहायता देता है। एक ही आदमी काम के लिए घूमता रहेगा, वही गिलास देगा, वही नींबू का रस निकालेगा, वही शर्बत लेकर के अतिथि के पास आयेगा, वही नमकीन लायेगा, वही मिठाई लायेगा। वही अकेला आदमी यह सारे काम कर अतिथी के पास 15 मिनिट में जाकर के पहुँचेगा। वर्तमान में विद्यालयों एवं गुरूकुलों में पढ़ रहे छात्रों में यह बड़ी कमी है। बहुत कम ऐसे मिलते हैं जो किसी को कहें कि देखिये अतिथि आ गये हैं, आप कृपया करके आइये।

सेवाभाबी व्यक्ति पढ़ता हुआ, लिखता हुआ, खाता हुआ छोड़ के यह सोच के आता है कि 5 अतिथि आ गये हैं, मुझे उनको शरबत देना है, उनको नाश्ता देना है। वह अतिथि के पास पहुँचकर बोलता – आप कृपा करके आइये। अब स्थिति यह है कि न तो कोई अपनी तरफ से कहता है, और अगर कोई कहता है तो बड़ी मुश्किल से होता है। मैं हर दिन की बात नहीं, अनेक बार की बात कर रहा हूँ। सभी व्यक्ति ऐसा नहीं करते हैं और सभी दिन ऐसा नहीं करते हैं लेकिन मैं कहता हूँ सभी व्यक्ति, सभी कार्य में, सभी व्यक्तियों के साथ में ऐसा व्यवहार करें कि कभी भी कोई कार्य करने के लिए कहे तो तत्काल अपने कार्य को छोड़कर के प्रेम से उठकर के आयें बल्कि ऊंची स्थिति बनानी चाहिए।

विद्यार्थी को इतना मूर्ख नहीं होना चाहिए कि विद्यालय में कोई अतिथि आ गये और पता नहीं चला। ऐसी मूर्खता न करें आप। आप सो रहे हैं, आप ध्यान कर रहे हैं या विश्राम कर रहे हैं तो अलग बात है। अन्यथा इतना सतर्क होना चाहिए। जब अतिथि आते हैं तो पता चल जाता है। आस–पास का व्यक्ति दौड़ के आता है, चलने की आवाज होती है, कोई–कोई बैठता है, खट–पट होती है तब पता चलना चाहिए कि हाँ अतिथि आ गये हैं। फिर बाहर निकल कर उनसे बात करना चाहिये। ऐसा नहीं होना चाहिये कि

मेरे प्रकोष्ठ में कोई व्यक्ति आया है और आप ध्यान ही नहीं दें कि कौन आया है। व्यक्ति पानी माँगता है, उसको कोई पुस्तकें देनी होती है, उसे मिलना होता है, कोई कार्य होता है। याद रखें– आप कितने ही अच्छे पढ़ने वाले हों, कितने ही अच्छे और कार्यों को करने वाले हों, कितने ही विनम्र हों, कितनी ही आपकी ध्यान–साधना हो, उपासना क्यों न हो लेकिन इन व्यवहारिक कार्यो के अंदर यदि आप असफल हैं तो मेरे दृष्टिकोण से आप योग्य नहीं हैं।

आप जिस मार्ग पर चले रहे हैं, उस मार्ग पर अपनी उन्नति की अनुभूति करें। साधनों को साथ में लेकर के चलें। आप इस बात का अनुभव करें, परीक्षण करें कि मेरे अंदर प्रसन्नता, शांति, निर्भीकता, सहन–शक्ति बढ़ी है या नहीं बढ़ी है। इन्हें बढ़ाने का प्रयास तो मैं कर रहा हूँ और अनुभूति होती है। आप इसके साथ में यह भी अनुभव करें कि सहनशक्ति, दुःखी होकर बढ़ रही है या सुखी होकर बढ़ रही है। सबकी सहन शक्ति बढ़ाई है मैंने, ऐसा कोई नहीं है जिसकी सहन–शक्ति नहीं बढ़ाई। अनुभव करें कि आपकी सहन–शक्ति बढ़ी है। अब आप इस बात का आंकलन करेंगे कि सहन–शक्ति बढ़नी अच्छी है या बुरी है, तो पायेंगे कि अच्छी है। अपनी सहन–शक्ति बढ़ाओ, अपना प्रेम बढ़ाओ, सहयोग की भावना बढ़ाओ। मैं तो कहता हूँ–आप एक साल पढ़ाई को छोड़ कर इस आध्यात्मिक मार्ग में अपनी नींव को मजबूत बना लें। नींव क्या है? सहकार की भावना। सभी व्यक्ति कहें कि यह व्यक्ति बड़ा प्रेमी स्वभाव वाला है। आप अपने काम को छोड़कर के देखो, सबकी सहायता करो। अपने प्रेम युक्त व्यवहार को मुख्य बनाओ। आप प्रेम युक्त व्यवहार को न छोड़ो। अपने कर्त्तव्यों को, दायित्वों को पूरा करेंगे तो किसी को बोलने का अवसर मिलेगा ही नहीं। मैं दिनभर पढूँगा, मैं दिनभर साधना करूँगा, मैं दिनभर चिंतन आदि आंतरिक कार्य करूंगा, ऐसा सोचना गलत है। दिनभर एक ही काम आदमी नहीं कर सकता। कुछ तो काम करो, बाहरी कार्य नहीं करो तो आंतरिक कार्य तो करो।

आपमें से हो सकता है कि कोई ऐसा भी हो जो कहता हो कि–

बाहर तो नहीं जायेंगे लेकिन आंतरिक कार्य भी नहीं करेंगे हम। कुछ तो समय लगाना पड़ता है। व्यक्ति को सेवा की भावना रखनी पड़ती है। मैंने बहुत सी बातें आपको संकेत रूप में बताई। व्यक्ति को तीव्र बुद्धि से ये सारी बातें समझनी चाहिये। प्रेम व्यवहार बढ़ायें, सतर्क, सावधान रहें, कर्त्तव्यों का पालन ठीक से करें बल्कि एक बात और मैंने बताई कि **सामाजिक संस्थागत कार्यों को आप ठीक प्रकार समझ कर के करें।** चारों तरफ आँखें बंद करके न रखें। ईश्वर की उपासना में बैठे हैं, उसमें तो इन कार्यो को भूलने का प्रयास करें। लेकिन आप चल रहे हैं तो दूसरी तरफ देखिये कि क्या गड़बड़ी हो रही है। संस्था में कहाँ जल रहा है, कहाँ गल रहा है, कहाँ सड़ रहा है, कहाँ टूट रहा है, कहाँ फूट रहा है। वर्षा ऋतु आने वाली है, अब बिगड़ेगा। मैं ध्यान नहीं दूँगा तो, बिगड़ जायेगा, टूटेगा–फूटेगा, सड़ेगा–गलेगा, नाश–विनाश होगा। आप थोड़ा ध्यान देंगे तो बात बनेगी।

भूमिका– सच्चा गुरू पथ प्रदर्शक है। उसके आश्रय से ज्ञान प्राप्त होता है लेकिन गुरू जान के करना चाहिए:–

(45) गुरू का परीक्षण करो।

आपको गुरू का परीक्षण करके भी चलना चाहिए। परीक्षण करें कि गुरू विद्वान है कि नहीं है, निष्काम भावना से काम कर रहा है या अपना काम सिद्ध कर रहा है, यह लोभी–क्रोधी, अहंकारी है अथवा नहीं है, आलसी, प्रमादी है कि नहीं। जब आप वहां रह रहे हैं तो व्यक्ति को मन में विश्वास करना चाहिए कि हाँ, मैं आपके अनुसार चल रहा हूँ। कोई गुरू पाप कर आये, अधर्म कर आये, अनीति से, कुनीति से राष्ट्र हानि, समाज हानि, व्यक्तिगत हानि कर रहा है तो अलग बात है। वहां गुरू का यह दोष कहना चाहिए। उसकी बात नहीं मानना चाहिए। उसकी गलती का उसे निर्देश करना चहिए, संकेत करना चाहिए।

भूमिका–विश्वास प्रेम की सीढ़ी है। जैसे फल के पहले फूल होता है, वैसे ही गुरू का अनुग्रह प्राप्त करने से पहले विश्वास होता है। इसलिए

आचार्यवर कहते हैं:–

(46) गुरू में अपने प्रति विश्वास जाग्रत करो।

आर्ष प्रणाली के अंदर जो हमारे गुरू हैं, अन्न दाता हैं, विद्यादाता हैं, दान–दाता हैं, पथ–प्रदर्शक हैं, रक्षक हैं, संचालक हैं, पोषक हैं, माँ हैं, बाप हैं, ऐसे व्यक्तियों के मन के अंदर अपने प्रति श्रद्धा पैदा करना चाहिए। गुरू को पता चलना चाहिए कि यह व्यक्ति मेरे समर्पित होकर के, अनुशासन में रहकर पूर्ण–पुरूषार्थ कर रहा है। इसके अंदर चंचलता नहीं है। यह अपनी स्वच्छंद बुद्धि नहीं चला रहा है। व्यक्ति जितना जल्दी इस बात को आचार्य के सामने प्रकट कर देगा, उतने ही उस व्यक्ति के प्रति विश्वास होगा, श्रद्धा होगी। तब आचार्य, गुरू, निर्देशक उसको सही मार्ग में चलायेगा, उचित निर्देश करेगा।

यह उदाहरण शास्त्र में आया है कि गुरू ने शिष्य से कहा–जाओ यह 500 गायें हैं, 1000 गाय कर लेना तब वापस आना। इसका क्या मतलब है, यह मूर्खता तो नही है। बड़ा नौजवान व्यक्ति समर्पित होकर के पढ़ने के लिए आया है और पढ़ने की बजाय उससे कहा जा रहा है कि–ले 500 गाय ले जा और जब तक 1000 न हो तब तक वापस यहां नहीं आना। वस्तुतः यह परीक्षा है उसकी। दो–चार वर्ष वह उस गुरु की आज्ञा का पालन करेगा। **गुरू को विश्वास हो जायेगा तो उसका बेड़ा पार कर देगा।**

दुनिया के अंदर सबसे पहली चीज विश्वास है। विश्वास हो गया तो व्यक्ति तन–मन–धन सब कुछ समर्पित कर देता है और आपस में विश्वास नहीं होता है तो चाहे बाप–बेटा क्यों न हो, पति–पत्नि क्यों न हो, वह सोचता है कि ये उसकी धन–सम्पत्ति न हड़प लें। इसलिए वह कहता है–दुकान में कब्जा रखो, मकान में कब्जा रखो, जमीन में कब्जा रखो, पैसे में कब्जा रखो। इसके विपरीत, जिसका विश्वास होता है तो कहता है–यह मेरा भाई है, मेरी बेटी है, मेरी पत्नि है, मेरे सब कुछ हैं, मेरे घर के हैं। विश्वास नहीं रहता है तो चिंता होती है। आज देश के अंदर 2 करोड़ मुकदमें हैं। उनमें से बहुत अधि

ाक संख्या भाई–भाई के, बाप–बेटे के, पति–पत्नि के, संबंधियों के और पड़ोसियों के मुकदमों की है। अविश्वास के कारण यह स्थिति है। जो वर्तमान में आपकी थोड़ी–बहुत भी गड़बड़ होती है, इसका कारण यह ही है।

आजकल विद्यार्थियों में सर्मपण की भावना कम है, अनुशासन कम है और वे बातों पर कम विश्वास करते हैं। विद्यालय के इतने नियम नहीं कि आप बिल्कुल बन्धन की, जेल में रहने की अनुभूति करो। कभी–कभी, किन्हीं–किन्हीं विषयों में आपको निर्देश करता हूँ और वे अनिवार्य चीजें हैं, जैसे कपड़े का नियम है, शौंचालय का है, स्नान करने का है। अब अगर उचित चीजों को आप ठीक प्रकार समर्पित होकर के, अनुशासित होकर के नहीं करते हैं तो फिर आगे बढ़ना मुश्किल है।

(47) संतान को विद्या और समाज को सम्पत्ति दो।

दूसरा हमारा कर्त्तव्य है कि समाज, राष्ट्र के लिये कुछ कार्य करें। मेरी उम्र बहुत छोटी है लेकिन मैं ऐसे बहुत से व्यक्तियों को जानता हूँ जिनके मन में कुछ करने की भावना थी। उनमें से एक तपोवन के अंदर मैनेजर थे। उन्होंने कहां आचार्य जी, मेरे चार बेटे हैं, सबकी कोठियां हैं, कारें हैं, 20–25 हजार उनकी तनख्वाह है। हम बूढ़े–बुढ़िया यहां आ गये हैं। उस कोठी को मैं बेच दूंगा और अच्छे काम में लगाऊंगा। मैने कहा– मन में बात आ गई है तो इस काम को जल्दी कर लें। वह एक बार दिल्ली गये मगर पहली बार किया नहीं। तीन महीने के बाद फिर आये, मैंने कहा अभी तक आपने किया नहीं। उन्होंने कहा– मेरे मन में तो है लेकिन क्या करूँ कर नहीं पाया। चौथे महीने में तो वे राम–नाम–सत्य हो गये।

आपने खून–पसीना एक करके स्वयं जो संपत्ति कमाई है,उस संपत्ति को अपने अधिकार में रखो। यदि आपके पुत्र आपके समान धार्मिक नहीं हैं, ईश्वर भक्त नहीं हैं, यज्ञ करने वाले नहीं हैं, भक्ति सेवा करने वाले नहीं हैं, सत्संग करने वाले नहीं हैं, स्वाध्याय करने वाले नहीं हैं, परोपकारी नहीं हैं, विनम्र नहीं हैं, अज्ञानी हैं, नास्तिक हैं, उनमें किसी प्रकार से धर्म के प्रति आस्था

नहीं दिखाई दे रही है,वे केवल भोग के कीड़े बने हुये हैं, तो ऐसे बच्चों को अपनी कमाई संपत्ति नहीं देना। यदि आप उस संपत्ति को उनके हाथ में देंगे तो आप भी पाप के भागी बनेंगे।

मैं विदेश में देखता हूँ, इंग्लैंड के अंदर व्यक्ति क्या करते हैं। वे 18 वर्ष तक बच्चे को खूब पढ़ाते हैं, लिखाते हैं। उनको योग्य बनाते हैं। 18 वर्ष के बाद जब बच्चे योग्य बन जाते हैं तो उनको छोड़ देते हैं। यह हमने देखा है कि करोड़पतियों के बच्चे मजदूरों की भाँति फैक्ट्रियों में काम कर रहे हैं। वे कहते हैं– आपका हमारा कोई संबंध नहीं है। बच्चे भी साथ नहीं रहते हैं और माता–पिता भी बच्चों को पास में नहीं रखते। अधिकांश माता–पिता अपनी सम्पत्ति को अपने बच्चों को नहीं देते हैं। भारतीय लोग तो बेटा अगर शराबी है, कबाबी है, तो सब कुछ देता है उसको और पाप का खुद भी भागी बनता है। मैं देखता हूँ मुम्बई के अंदर, दिल्ली,कलकत्ता, चेन्नई के अंदर और नगरों में भी जिन माता–पिता ने खून–पसीना एक करके दो–दो रूपये इकट्ठे करके लाखों की संपत्ति जोड़ी। आज उनके बच्चे पैसे उड़ाते हैं। गाड़ी लेकर सुबह निकलते हैं। वहां के होटल में गये, वहां क्लबों में गये, वहां जुआँ खेला, वहां कुकर्म किया, वहां पिक्चर देखी। मुम्बई के अंदर आपको हजारों की संख्या में ऐसे नवयुवक मिलेंगे जो सुबह पॉकिट में 10,000 रूपये डालकर निकलते हैं और रात में 10,000 रूपये उड़ाकर वापस आते हैं। इसके लिए माँ–बाप ही दोषी हैं।

हमारी जो संपत्ति है, इस संपत्ति को जब तक प्रयोग में लाते हैं तब तक स्वयं प्रयोग कर ले, अन्यथा समाज, राष्ट्र के लिए लगायें। वैदिक धर्म का आज प्रचार–प्रसार इसलिए नहीं हो रहा है क्योंकि जो वैदिक धर्म को मानने वाले हैं, उससे लाभ उठाने वाले हैं, वे इसके लिए तन–मन–धन का त्याग नहीं कर रहे हैं। विदेशी कारण नहीं हैं, दूसरे मत–संप्रदाय वाले कारण नहीं हैं, हम ही कारण हैं। आर्य समाज के अंदर, वैदिक धर्म के अंदर बहुत अच्छे व्यक्ति हैं जो लाखों–लाखों रूपये का दान देते हैं, संस्थाएं खड़ी करते हैं, पढ़ाते हैं,

लिखाते हैं, लेकिन अधिकांश व्यक्ति ऐसे हैं जो आर्य समाज के प्रशंसक हैं, वैदिक धर्म के प्रशंसक हैं लेकिन जहां देने की बात आती है वहां कुछ नहीं देना चाहते। घर के मकान उनके 20–20 वर्ष में, 25–25 वर्ष में 20–30 लाख के बन गये हैं। 3–4 गाड़ियां ले ली हैं और अच्छा खाते–पीते हैं। लेकिन व्यक्तिगत सम्पत्ति में से समाज के लिए 50 हजार भी नहीं देते हैं। ये दोषी व्यक्ति हैं, उन्हें वैदिक धर्मी नहीं कह सकते। महानुभाव स्वामी दयानंद ने कहा है कि यदि आपके दो लड़के हैं, तीन लड़के हैं तो आर्य समाज को अपना चौथा लड़का मानो। आप मुझे बताइये जितने भी आर्य समाजी व्यक्ति हैं, वैदिक धर्मी हैं, अपने एक लड़के के ऊपर एक महीने के अंदर कोई दो हजार खर्च करता है, कोई तीन हजार खर्च करता है। जो विदेशों में पढ़ रहे हैं, उनके ऊपर हजारों रूपये प्रति महीना खर्च करते हैं। आर्य समाज के लिए 50 रूपये देने को तैयार नहीं हैं। हमें लोग कहते हैं– आचार्य जी हमारे घर चलो। मैंने कहा–नहीं, आर्य समाज में रूकेंगे हम। प्रायः आर्य समाज के कमरे में देखिये, पिस्सू होते है। खटमल होते हैं। शौंचालय को देखिये वहां पर, बड़े–बड़े मच्छर होते हैं। मैंने कहा आप समाज के इतने बड़े प्रधान, इतने बड़े मंत्री आपकी कोठी 50 लाख की और समाज के लिए, साधु–सन्यासी के लिए एक अच्छा कमरा नहीं। शौंचालय देखिये, स्नानागार देखिये, बाल्टी देखिये, बिस्तर देखिये, कुछ भी रहने लायक नहीं। कारण यही है कि हम त्याग करने को तैयार नहीं हैं। हमारे पास में ईश्वरीय ज्ञान वेद है, ऋषियों का ज्ञान हमारे पास है लेकिन चलाने वाले आदमी जो हैं, वे निर्बल हैं। तन–मन–धन का त्याग करने के लिए हम तैयार नहीं है।

विदेशों में लोग हमसे प्रश्न करते हैं कि भारत–वर्ष में वैदिक धर्म का प्रचार क्यों नहीं हो रहा है। वहां पर दूसरे मत–संप्रदाय क्यों फैल रहे हैं? हम कहते हैं वैदिक धर्म है तो ए–के 47, लेकिन चलाने वाला जो आदमी है वह लंगड़ा है। उसके पास में शक्ति नहीं है, वह कायर है, रोगी है। सच्चे ईश्वर को जानकर के, मानकर के, उपासना करके उसके अनुसार अपने जीवन को

चलाने वाले व्यक्ति को कितनी शक्ति मिलती है। यह ईश्वर की वाणी आती है महानुभाव और दूसरा व्यक्ति म्याऊं–म्याऊं करता रहेगा। बोलना आता ही नहीं उसको। स्वामी जी शेर की तरह दहाड़ते हैं। हमारा राष्ट्र के प्रति भी कुछ कर्त्तव्य है, उसे आप समझें। यदि हम अपने तन–मन–धन का राष्ट्रहित में त्याग नहीं करते हैं तो निश्चित जानिये कि हम गुलाम होंगे। हम तो स्वयं गुलाम बनते जा रहे हैं। आ बैल मुझे मार। हम स्वयं स्वीकार करते जा रहे हैं। हम व्यक्तिगत जीवन का निर्माण करें। सामाजिक जीवन का निर्माण हेतु तन–मन–धन का त्याग करें।

इंग्लैंड में 18 वर्ष के बाद में कोई भी पिता अपने पुत्र को संपत्ति नहीं देता है। मेरा कर्तव्य तेरे को पढ़ाने का था, तेरे को ग्रेजुएट बना दिया है और तू चाहता है आगे पढ़ना तो पढ़ सकता है, नहीं तो तेरे को काम करना है तो मुझसे अलग हो जा। तू तेरा, मैं मेरा। **इग्लैंड में करोड़पतियों के बच्चे फैक्ट्रियों में जाकर के काम करते हैं।** ऑफिस में जाकर, मजदूरी भी करते हैं और संपत्ति उनको नहीं मिलती है। हाँ, मिल जाये तो ठीक है, नहीं तो सरकार खाती है। चाहे सोना, धन, घर कुछ भी हो, वह सब सरकार की संपत्ति होती है। यहाँ यह विडम्बना है कि भारत देश के अंदर लाखों की संख्या में ऐसे धनाढ्य व्यक्ति हैं जिनके जीवन का ऊँचा स्तर है। उनके पास अच्छा पैसा, अच्छा मकान, अच्छी गाड़ी, अच्छी सुविधा है, यानी सब कुछ अच्छा है। जीवन का स्तर उच्च है, लेकिन सन्तति निम्न स्तर की है। वह शराब पीती है, माँस खाती है, जुआँ खेलती है, क्लबों में जाकर उल्टे–सीधे काम करती है, जिनकी दिनचर्या ठीक नहीं है, जीवन ठीक नहीं है, ईश्वर के प्रति विश्वास नहीं है, विनम्रता नहीं है, सेवा की भावना नहीं है, त्याग तपस्या नहीं है। संध्या–उपासना आदि ऊँची बातों को छोड़िये, ये सामान्य चीजें भी नहीं हैं। जीवन भ्रष्ट है। लाखों की संख्या में लखपति, करोड़पति व्यक्ति ऐसे निम्न स्तर के बच्चों को अपने घर–संपत्ति छोड़ कर जाते हैं और उनका विनाश करते हैं। ये राष्ट्र का विनाश हो रहा है। मेरा बेटा है बस।

ऐसे काम विदेश में नहीं होते हैं। वो तो करते भी नहीं हैं। अधिकांश संपत्ति सरकार को जाती है। प्रथम तो यह है कि विदेश में संग्रह करने की प्रवृत्ति नहीं है। कमाओ, खाओ के सिद्वांत पर वे लोग चलते हैं। यहाँ का आदमी सात पीढ़ी का इकट्ठा कर लेगा और विचार करता है कि आठवीं पीढ़ी मेरी कहीं भूखी तो नहीं मरेगी। पैसा कमाना चाहिए लेकिन संग्रह प्रवृत्ति ऐसी न हो। **समाज, राष्ट्र में धन लगना चाहिए लेकिन भारतवर्ष में अयोग्य पुत्रों को धन दिया जा रहा है।** यह राष्ट्र की बहुत बड़ी हानी है। आप सब देखते होंगे कि कुटेव, कुव्यसन धनी व्यक्तियों के अंदर जितने रहते हैं, उतने मध्यम वर्गीय बच्चों या बड़ों में नहीं हैं। निम्न स्तर की बात छोड़ दीजिये। अपवाद सभी में होते हैं। अन्याय के कारण, अत्याचार के कारण, भूखे होने के कारण भुखमरे भी डाकू बन जाते हैं लेकिन जान बूझकर के जो विनाश हो रहा है, वह श्रेष्ठ व्यक्तियों में अधिक है। यह नियंत्रण न होने के कारण, सामाजिक परंपरायें ऐसी होने के कारण है। ये भी समाज की एक कुटेव है।

(48) वैश्य को धन कमाना चाहिए।

वेद ने कहा है–धन के लिए पुरूषार्थ करो। व्यक्ति धन प्राप्त करने के लिए अपना सारा जीवन व्यतीत कर देता है। सुबह से लेकर सायंकाल तक और बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक धन प्राप्त करने में लगा रहता है। धन प्राप्त करना कोई कठिन कार्य नहीं है। **धन कमाने के लिए बुद्धि, पुरूषार्थ, तपस्या, इच्छा, साधन, युक्ति एवं अनुभव चाहिये।** अगर यह सब साधन हैं तो व्यक्ति कमा सकता है।

क्या आप को पता है कि वैदिक संस्कृति के अंदर धन कमाने का अधिकार किसको है। चार प्रकार के आश्रम हैं– ब्रह्मचर्य आश्रम, ग्रहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और सन्यास आश्रम। चार प्रकार के वर्ण हैं– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इनमें से गृहस्थ आश्रम में ही धन कमाने का अधिकार है, बाकी तीन आश्रम में नहीं है। केवल वैश्य को धन कमाने का अधिकार है। आज के समय में जिसे धन कमाने का अधिकार है, वह तो ध

ान कमा रहा है लेकिन साथ–साथ वह व्यक्ति भी धन कमा रहा है जिसे यह अधिकार प्राप्त नहीं है। चारों में तीन को अधिकार नहीं है। लेकिन आज चारों जातियाँ धन कमाने में लगी हुई हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र भी लगे हुये हैं। ब्राह्मणों के साथ आज स्थिति ऐसी भी है कि सन्यासी भी धन कमाने में लगे हुये हैं।

(49) दो प्रकार के धन हैं।

वेद कहता है– 'हे ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले ऐश्वर्यशाली, बलवान, शक्तिमान, जीवात्मा शीघ्र से शीघ्र धन को प्राप्त कर ले।' धन भी दो प्रकार के होते हैं। सामान्य धन और महान धन। सामान्य धन के अंतर्गत भौतिक चीजें आती हैं जैसे कि रुपये, सोना–चाँदी और दूसरा जो है महान धन, उसके अंतर्गत मुक्ति होती है। वेद कहता है कि धन कमाओ लेकिन महान ध ान कमाओ। ये जिंदगी का सबसे बड़ा धन होता है। जैसे नाव है जो नदी को पार करवा देती है, ऐसे ही धन को, विद्या को, बल को और सामर्थ्य को प्राप्त करके स्वयं दुःख के सागर से पार हो जाओ और दूसरों को भी पार कराओ। जो व्यक्ति, कम धन वाले, कम प्रतिष्ठा,विद्या,सम्मान,बल, सामर्थ्य वाले हैं, उनको भी सहायता करके पार कराओ। उनको पुष्ट करो, उनकी रक्षा करो। धन जो प्राप्त हुआ है, वह बुराई के लिए, अपने आपको नष्ट–भ्रष्ट करने के लिए अपने जीवन को नष्ट करने के लिए नहीं है।

आज दो स्थितियाँ संसार में देखने में आती हैं– करोड़ों व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें धन के अभाव में अच्छा खाने को नहीं मिल रहा है, अच्छा सोने को नहीं मिल रहा है, अच्छा पहनने को नहीं मिल रहा है। वे पशुओं के समान जीवन व्यतीत कर रहे हैं। दूसरी तरफ वे लोग भी हैं, जिनके पास पैसा है मगर उन व्यक्तियों का पैसा उनकी बर्बादी का कारण बन रहा है। उनमें कुटेव, कुव्यसन, शराब, नशा, जुँआ, हिंसा, प्रमाद और माँस भक्षण आदि बुरी प्रवृत्तियाँ आ गई हैं और वे अपना विनाश कर रहे हैं।

जो व्यक्ति मूर्ख हैं, वे अपनी मूर्खता से परेशान हैं, और इसके

विपरीत जो व्यक्ति बुद्धिमान हैं, जिन्होंने डिग्रियाँ प्राप्त की हैं, उनमें से अधि ाकांश व्यक्ति उस विद्या का दुरूपयोग कर रहे हैं। वे लोगों को लूटने, छल–कपट, आदि करने के लिए अन्याय, पक्षपात एवं हानि पहुँचाने के लिए अपनी बुद्धि का गलत उपयोग कर रहे हैं। इसी प्रकार जो व्यक्ति निर्बल है, वह तो निर्बलता के कारण दुखी है। लेकिन जिनके पास बल है, वे लोगों की रक्षा न करके उन्हें सता रहे हैं, हिंसा कर रहें हैं, उन्हें लूट रहे हैं। दोनों तरफ दुरावस्था है।

शक्ति, विद्या और धन जब दुष्ट आदमी के पास में आते हैं तो वह शक्ति से पक्षपात, शोषण, अन्याय करता है, विद्या से दूसरों को हराता है, अपमानित करता है, मूर्ख बनाता है और धन से भोग–विलास, आलस्य–प्रमाद, कुटेव और ऐश्वर्य में लिप्त हो जाता है ।

बहुत से विदेशी लोग जानते नहीं हैं कि भारतवर्ष कहाँ पर है, कौन सा नगर है, कौन सा प्रान्त है, कौन सी गली है लेकिन अरबों डॉलर यहां पर आ रहे हैं। लोग यह मानकर के धन दे रहें हैं कि ये लोग हमारे भाई हैं, हमारे व्यक्ति हैं, हमारे धर्म के हैं, हमारे सम्प्रदाय के हैं। अमेरिका की बात दूर रही है, इंग्लैंड की बात दूर रही है, यूरोप की बात दूर रही है और प्रान्तों की बात दूर रही है, हम अपने प्रान्त में भी, अपने गांवों में, अपने पड़ोस में भी, अपनी गली में भी जो व्यक्ति बेचारा भूखा है, नंगा है, अपाहिज है, उनके लिए कुछ करने को तैयार नहीं हैं। ऐसे व्यक्ति जो दूसरों को सहायता नहीं करता है, उनको उन्नति नहीं कराता है, ऐसा व्यक्ति आध्यात्मिक रूप से उन्नति नहीं कर सकता है।

ईश्वर ने कहा है– ऐ जीवात्माओं तुम्हारें पास में बहुत शक्ति है, बल है, योग्यता है, अथवा प्राप्त कर सकते हो। तुम धन को प्राप्त करो, शीघ्र प्राप्त करो। धन को प्राप्त करके अन्य लोगों की सहायता करो, उनको ऊपर उठाओ। विद्या के दृष्टिकोण से, व्यवसाय के दृष्टिकोण से, खान–पान के दृष्टिकोण से, सामर्थ्य के दृष्टिकोण से, व्यवसाय के दृष्टिकोण से, उनको

उठाओ और बाद में कहा है– आपका धन जो है, विनाश के लिए नहीं है, दुराचार के लिए नहीं है। इससे अपने जीवन का उत्थान करो।

भूमिका– व्यक्तियों से समाज और समाज से राष्ट्र बनता है। इसलिए समाज व राष्ट्र का भला किये बिना उसमें रहने वाले व्यक्ति का भला नहीं हो सकता। हमारा दिया हमें वापस मिल जाता है इसलिए कहा जाता है कि– ''देना ही वास्तव में पाना है''। पहले घर वालों को, फिर नगर वालों को और फिर राष्ट्र वालों को दो और सुरक्षा, मित्रता और गौरव को प्राप्त करो। इसलिए आचार्यवर कहते हैं:–

(50) सामाजिक–राष्ट्रीय दायित्वों का निर्वहन करें।

हमें सर्वप्रथम सर्वाधिक शक्ति व्यक्तिगत जीवन के निर्माण में लगानी चाहिए लेकिन केवल व्यक्तिगत जीवन के निर्माण के लिए ही सारा बल, शक्ति, समय हम लगायें और अपने पड़ोस में क्या हो रहा है, उसके प्रति ध्यान नहीं दें तो यह उचित नहीं है। गली में क्या हो रहा है, गाँव में क्या हो रहा है, लोगों की कैसी प्रवृत्ति है, स्वास्थ्य कैसा है, शिक्षा कैसी है, धर्माचरण कैसा है, व्यवहार कैसा है, दिनचर्या कैसी है, खान–पान कैसे हैं, विचार कैसे हैं, जीवन का लक्ष्य कैसा है, प्रेम कितना है, आदि–आदि, इन बातों को देखना जरूरी है। व्यक्तिगत जीवन के निर्माण के लिए तन–मन–धन को लगायें और दूसरों के लिए कुछ भी न लगायें, कोई विचार न करें, कोई योजना न बनायें, कोई तन–मन–धन का त्याग न करें तो ऐसा व्यक्ति सामाजिक दृष्टिकोण से अपराधी होता है।

आज हमारे भारतवर्ष की अवस्था बहुत खराब है। इन सबके लिए हम सरकार को दोष देते हैं, राजा को दोष देते हैं, विधायक और सांसद को दोष देते हैं, पुलिस को दोष देते हैं, डॉक्टरों को दोष देते हैं, शिक्षकों को दोष देते हैं लेकिन हमारा स्वंय का कितना दोष है, उसके विषय में हम प्रायः विचारते ही नहीं हैं। आज इस देश के अंदर अधिकांश व्यक्ति यदि मैं 80–90प्रतिशत कहूँ तो अतिश्योक्ति नहीं होगी, समाज से, राष्ट्र से जितना लाभ उठा रहा है,

उसका वह आधा नहीं, चौथाई भाग नहीं, दसवाँ भाग भी समाज को वापस नहीं दे रहा है।

सामाजिक सुविधाएं हमको चाहिए। हम चाहतें हैं कि सड़कें अच्छी हों, बिजली अच्छी हो, बांध अच्छे हों, बसें अच्छी हों, रेलें अच्छी हो, विद्यालय अच्छा हो, पुलिस विभाग अच्छा हो, चिकित्सालय अच्छे हों। हम जिन–जिन की अपेक्षा करते हैं, वह हमारी व्यवस्था हम अच्छी चाहते हैं, लेकिन बदले में कुछ भी नहीं देना चाहते हैं। क्या हमारे विकास के लिए पाकिस्तान वाले पैसा देंगे या अमेरिका से आयेगा।

एक व्यक्ति जिस नगर, गांव और राष्ट्र में रह रहा है, अपने जीवन के अंदर चाहे वह 70 वर्ष का हो, 80 वर्ष का हो, अन्य व्यक्तियों से लाखों रूपये का सहयोग प्राप्त करता है। चिकित्सा हो, संदेश हो, कोई भी क्षेत्र हो। लेकिन देने के लिए कुछ भी नहीं। ऐसे समाज की दुर्दशा होती है। सरकार से अधिक हम दोषी हैं। सरकार को देते क्या हैं हम। आज देश के अंदर 15 प्रतिशत व्यक्ति भी सरकार को टैक्स नहीं देते हैं और उनमें से ऐसे भी हैं जो 80, 85 प्रतिशत टैक्स नहीं देते हैं। अर्थात् चिकित्सालय हों, बसें हों, कुछ भी हो जिनसे सरकार हमारे कल्याण के लिए कार्य करती है, उन कल्याणकारी, सामाजिक कार्यों के लिए व्यक्ति एक नया पैसा नहीं देता है। देश में ऐसे करोड़ों व्यक्ति हैं। उनमें से ऐसे भी हैं जो साल में 50,000 नहीं, लाख–लाख रूपये कमाते हैं, लाख से भी ज्यादा कमाते हैं। करोड़ों व्यक्ति ऐसे हैं, जो टैक्स देने योग्य हैं लेकिन खाता नहीं रखते हैं। ये चोरी करते हैं। दोषी हैं ये। ये दण्डनीय हैं, अपराधी हैं।

जो समाज में रह रहा है, मगर उसकी उन्नति के लिए, उसकी प्रगति के लिए कुछ नहीं दे रहा है, ऐसा व्यक्ति धार्मिक नहीं हो सकता। उसकी भक्ति पूरी नहीं हो सकती, ध्यान नहीं लगेगा उसका, पूजा नहीं होगी उसकी, एकाग्रता नहीं होगी, मन में शांति नहीं होगी। क्या स्थिति बनी है हमारी। इस विषय में आप विचार करके देखें। आपको कुछ–कुछ अनुभूति

होती होगी क्योंकि आप आर्य समाज के संपर्क में हैं। इसलिए आप राष्ट्रीय भावना से कुछ संपर्क में हैं। आप कुछ–कुछ पढ़ते हैं।

आज की स्थिति क्या है । साधु को, संतो को, भक्तों को जो भी हैं, अधिकतर केवल मंच में आकर के नाच नचवाते हैं, गुणगान करते रहते हैं कि राम ऐसा था, राधा ऐसी थी, कृष्ण ऐसा था। वे इस चीज पर ध्यान नहीं देते हैं कि रोग क्या है, राष्ट्र के प्रति हमारा कर्त्तव्य क्या है? समाज के प्रति क्या कर्त्तव्य है? विश्व के प्रति क्या कर्त्तव्य है? भाषा के प्रति, खान–पान के प्रति, हमारे व्यक्तिगत जीवन के प्रति भी ध्यान कम दिया जा रहा है। मूल रोग को व्यक्ति पकड़ नहीं रहा है।

राष्ट्र के प्रति हमारा कर्त्तव्य है। इसलिए जो व्यक्ति धन कमाता है, मगर राष्ट्र को धन समर्पित नहीं करता है, तो वह अपराधी है, दण्डनीय है, दोषी है। बिना धन के समाज की व्यवस्था नहीं हो पाती है। स्वामी दयानंद जी ने अपने ग्रंथों के अंदर वेद–भाष्य करते हुए जगह–जगह वेद मंत्रों का उद्धरण करके हमारे सामने योजना रखी है। छोटे से पेट को भर लेना और छोटे से शरीर को जीवित रखना, यह कोई बहुत बड़ा कार्य नहीं है। एक–दो बच्चों को पैदा कर देना, उन्हें पढ़ा लिखा देना कोई बड़ा कार्य नहीं है। हर व्यक्ति के मन के अंदर यह भावना होनी चाहिए कि मैं व्यक्तिगत जीवन का कार्य करूंगा, साथ ही मेरा उद्देश्य विश्व के अंदर वैदिक साम्राज्य की स्थापना करना भी होगा।

मुस्लिम सम्प्रदाय वाले कितने तत्पर हैं, कितने सतर्क हैं, कितनी योजनायें बनाते हैं। वे भी रोटी खाते हैं, वे भी बच्चे पैदा करते हैं, वे भी धन्धा करते हैं, वे भी नौकरी करते हैं, लेकिन मन में क्या संकल्प लिये हुये हैं कि हम सारे विश्व को इस्लामिस्तान बनायेंगे। अभी मैं स्वयं इंग्लैण्ड गया था, स्वयं मैंने निकले हुए परचे देखे। वक्ताओं को स्पष्ट मंच के ऊपर बोलते हुये देखा। उनको सरकार ने जेल में डाल दिया गया। लेकिन स्पष्ट मंच में आकर कहा–जो करना है, कर लो, हमने निर्धारण कर लिया है कि हम आने वाले

काल में इस इंग्लैण्ड को इस्लामिस्तान बनायेंगे। कितनी हिम्मत है उनमें, कितना संगठन होगा, कितनी ऊँची भावनायें होंगी, कितने सतर्क और सावधान होंगे, कितना पीछे उनमें बल होगा, कितने संस्कार होंगे उनमें। उनकी भी पत्नि है, उनके भी बच्चे हैं, यहां तो सिर्फ एक ही बच्चे हैं उनके तो १०–१० बच्चे हैं। ये सब इंग्लैण्ड में है। हम कहते हैं हम दो, हमारे दो। बल्कि अब तो हम दो, हमारे एक का समय आ गया है। और ये कहते हैं–हम चार हमारे चौबीस। देखे हैं ऐसे परिवार।

राष्ट्रीय भावना की कुछ बातें भी होनी चाहिये। जिस व्यक्ति का लक्ष्य संकुचित है, बस मैं भला, मेरा परिवार भला, मेरी पत्नि, मेरे बच्चे भले, समाज, राष्ट्र जाये भाड़ में, मुझे कोई जरुरत नहीं है, कोई मतलब नहीं है। ऐसे समाज का कोई विकास नहीं हो सकता। वो व्यक्ति राष्ट्र, समाज के लिये कोई लाभकारी नहीं है, बल्कि हानिकारक है। उसका भी विनाश होगा, और वह समाज को हानि करेगा। राष्ट्र को बचाये रखने के लिए, राष्ट्र के अंदर प्राचीन विद्यमान गौरवमयी, संस्कृति,सभ्यता,आचार–विचार,परम्पराओं, खानपान, वेशभूषा, शिक्षा, कला, आदर्शों, और विधि–विधानों को बचाए रखने के लिए व्यक्ति को पारिवारिक दायित्वों से हटकर के कुछ विशेष कार्य करना पड़ता है, त्याग करना पड़ता है, योजनायें बनानी पड़ती है, धन लगाना पड़ता है, जागना, भागना पड़ता है।

आज वो भावना नहीं है। जब क्रिकेट मैच आता है, तो शहर ऐसा हो जाता है मानो कर्फ्यू लगा है। ऐसे घर में खा रहें हैं, पी रहें हैं, जैसे वैदिक राज्य आया हुआ है। लगता है कि कोई खतरा नहीं, कितना भोला आदमी है। **जीवन सुरक्षित नहीं, तन–मन, चरित्र सुरक्षित नहीं, चारों तरफ आक्रमण हो रहा है। कोई भरोसा नहीं व्यक्ति के जीवन का, फिर भी वह ठाठ से ऐसे टी.वी. के सामने खा रहा है जैसे कि राम–राज्य आया हुआ है।** ये विचार करने वाली बातें हैं। राष्ट्र के प्रति हमारा कोई त्याग ही नहीं है, हमारे मन में कोई भावना ही नहीं है, ऐसा नहीं है, अभाव नितान्त नहीं हुआ है। आज भी देश

के अंदर कार्य करने के लिए व्यक्ति हैं। लेकिन एक अरब के अंदर कुछ हजार आदमी हैं या बहुत छोटे स्तर के निकालेंगे तो कुछ लाख हैं, जो राष्ट्र के लिए अपने परिवार से हटकर के परिवार के दायित्वों से हटकर के समाज के लिये कुछ कार्य करें।

हमें व्यक्तिगत जीवन के साथ–साथ में राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करना चाहिये। हमारे राष्ट्रीय कर्त्तव्य भी होते हैं। टैक्स देने के मामले को ही लें। देश के अंदर गरीबी का जो कारण है, हम बने हुये हैं। गरीबों के लिए, अपाहिजों के लिए, निर्धनों के लिए हमारा कर्त्तव्य कितना है। एक व्यक्ति साल भर में सरकार को 10,000 या 5,000 या 2000 भी देता हो वह तो कहने का अधिकारी है कि सरकार ठीक नहीं कर रही है। लेकिन टका देने को एक भी नहीं और चिल्लाता है– सरकार पैसा खा जाती है। अरे भलेमानुष, तू तो पैसा देता ही नहीं है, तेरा पैसा थोड़ी खाते हैं, इसलिए तुझे अधिकार ही नहीं है इस बात को कहने का। हमारा कर्त्तव्य है कि हम सामाजिक सर्वहितकारी कार्यों के अंदर जो सरकार ने नियम बनाये हैं, उनका पालन करें क्योंकि हमारा कर्त्तव्य है राष्ट्र के प्रति। सरकार ठीक कार्य नहीं करती है, भ्रष्ट है, तो भी सरकार को आधा तो दो, 30 प्रतिशत नहीं देना हो तो 15 प्रतिशत तो दीजिये आप । अगर लाख रुपये कमाते हैं और सरकार ने नियम बनाये हैं कि 4000 रूपये दें, 5000 रूपये दें। आप 5000 नहीं, 2500 रुपये दीजिये, आप शेष 2500 जो बचे हैं उसको समाज के कार्यों में, स्कूल के कार्यों में, किसी चिकित्सालय में लगाइये, किसी गरीब को छात्रवृत्ति दीजिये, रोगी को औषधि दीजिये, किसी को अनाज दीजिये। **जो व्यक्ति इस राष्ट्र में रह रहा है, साल भर में लाख रूपये कमाता है मगर समाज के लिए 5000 रुपये भी नहीं देता है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से, सामाजिक दृष्टिकोण से, राष्ट्रीय दृष्टिकोण से, वह व्यक्ति राष्ट्रद्रोही है। वह इस राष्ट्र में सुखी होकर के जीने का प्रयास कर रहा है। यह उसकी असंभव कल्पना है।** ऐसे व्यक्ति का चित्त एकाग्र नहीं हो सकता, उसे शांति नहीं मिल

सकती। सुखी हो ही नहीं सकता कोई। हमारा कर्त्तव्य है कि इन कार्यों पर ध्यान दें। आपको आनंद आयेगा। आप गर्व से कह सकते हैं। आपकी वाणी में हिम्मत आयेगी कि मैं भी राष्ट्र के लिए कुछ कर रहा हूँ।

विदेशों की हम चर्चा करते हैं। वहां पर सड़के बढ़िया हैं, कारें बढ़िया हैं, पुल बढ़िया हैं, कपड़े अच्छे हैं। वहाँ पर व्यक्ति 100 रुपये कमाता है तो 30 रुपये टैक्स के रूप में देता है। बताओ यहां कितने व्यक्ति हैं जो कमाई के 100 रूपये में से 30 रूपये देते होंगे। सरकार को न दे तो कोई बात नहीं। अपनी कमाई में से हर वर्ष 5000, 10,000 रुपये निकालकर विद्यालय में, चिकित्सा में, गरीबों को और अनेक प्रकार के सामाजिक कार्यों में लगाना चाहिये। जो व्यक्ति कमाकर के कुछ भी न दे, वह व्यक्ति राष्ट्रद्रोही है। राष्ट्र के लिए करने के लिए कहते तो बहुत हैं, मगर करने वाले व्यक्ति बहुत कम हैं। चिल्ला सभी रहे हैं कि भ्रष्टाचार बढ़ रहा है, गंदगी है, दुराचार है, काम नहीं हो रहा है लेकिन स्वयं कुछ देने को तैयार नहीं हैं।

कहां विश्व को हम आर्य बनाने की कल्पना कर रहे हैं। अनार्य व्यक्ति आगे बढ़ रहे हैं। जिनकी कुसंस्कृति है, कुसभ्यता है, गलत खान–पान है, गलत उनका इतिहास है, जो सभ्य नहीं हैं, वेदों के आगे, दर्शनों के आगे, गीता के आगे, रामायण के आगे, भगवान राम–कृष्ण के आगे, ऋषि मुनियों के आगे उनका जीवन और उनका आदर्श, उनके सिद्धांत, मंतव्य कुछ नहीं हैं। ऐसे व्यक्ति संगठित होकर के साधनों को लेकर के आगे बढ़ रहे हैं।

हम ध्यान करें, हम उपासना करें, हम जप भी करें, हम स्वाध्याय भी करें, हम सत्संग भी करें, अपनी दिनचर्या भी ठीक रखें, खान–पान भी अच्छा रखें, यम–नियम का पालन भी करें । हर प्रकार से हम स्वच्छ और शुद्ध हों, लेकिन इसके साथ–साथ समाज, राष्ट्र के लिए हममें त्याग की भावना भी होनी चाहिये।

हमें व्यक्तिगत जीवन को श्रेष्ठ बनाना है, महान बनाना है, पवित्र बनाना है, ईश्वर को समझना है, भक्ति करनी है लेकिन भक्ति दिन–भर नहीं

होगी, ध्यान दिनभर नहीं होगा। हमें रोटी भी खानी है, पैसा भी कमाना है, बच्चों का पालन भी करना है लेकिन साथ–साथ समाज, राष्ट्र के लिए हम कुछ न कुछ त्याग करना जरूरी है। मैं स्पष्ट कहता हूँ– जो व्यक्ति 100 रुपये कमाकर के 5 रूपये समाज, राष्ट्र के लिए नहीं देता है, वह राष्ट्रद्रोही है। राजा को न दें, टैक्स न दें लेकिन अपनी ओर से 100 रुपये में से 5 रुपये निकालकर के किसी गरीब को, किसी अनाथ को, किसी रोगी को, निर्धन को, छात्रवृत्ति के रूप में, अन्न के रूप में, भोजन के रूप में देना चाहिए। हमारा कर्त्तव्य है कि हम भी अपने जीवन के अंदर आदर्श भावनाओं को लेकर के चलें। जब हमारा लक्ष्य ऊंचा होगा तो कार्य भी ठीक करेंगे। मन में आदर्श भावनायें होनी चाहिए। आज हजार माताओं में ऐसी एक भी मिलना कठिन है, जो कहेंगी कि मैं अपने बेटे को ब्राह्मण बनाऊंगी। जो वेदों को पढ़ेगा और वेदों का प्रचार करेगा। इस प्रकार की इच्छा तो लाख में से शायद एक माँ की होती होगी। **जिस देश के अंदर लाख में से, हजार में से एक माता के मन में यह भावना नहीं उत्पन्न होती है कि कम से कम एक बेटा मेरा, वेदों को पढ़े, संस्कृत का विद्वान बने, दर्शनों को पढ़े और समाज–राष्ट्र के अंदर वैदिक धर्म का प्रचार करे तो कुछ नहीं होने वाला। यह देश गुलाम बनेगा और बन ही गया है। राजनीतिक दृष्टिकोण से,चरित्र के दृष्टिकोण से,वेशभूषा के दृष्टिकोण से, दिनचर्या के दृष्टिकोण से,जीवन के लक्ष्य के दृष्टिकोण से, भाषा के दृष्टिकोण से और उसी प्रकार की मान्यतायें हमारी आ गई। हम गुलाम तो बने बनाये हैं।**

ध्यान दीजिये, आज जिन–जिन व्यक्तियों के पास में पैसा है, उनमें से 20 प्रतिशत व्यक्ति भी अपने देश या लोगों के लिये कुछ विशेष कार्य नहीं कर रहे हैं। इतना सब कुछ होने के बाद भी पैसे वाले व्यक्ति कुछ नहीं कर रहे हैं। विदेश में प्रत्येक व्यक्ति जो रोजाना 100 पौंड कमाता है, वह 30 रुपये कर (टैक्स) देता है। चाहे वह कुछ भी कार्य कर रहा हो, उसे कर देना ही पड़ता है। और हमारे भारत में क्या है? इस देश के अंदर लाखों नही

करोड़ों व्यक्ति ऐसे हैं, जो करदाता होते हैं, लेकिन एक नया पैसा समाज, राष्ट्र के लिये नहीं देते हैं। ऐसे व्यक्ति सामाजिक सुख प्राप्त नहीं कर सकते, आध्यात्मिक सुख की बात तो दूर रही। आपको हजारों व्यक्ति ऐसे मिलेंगे जो प्रति वर्ष लाखों रुपये कमाते हैं। दो–पाँच दस लाख हो सकते हैं लेकिन ये कमाये हुए पैसों में से। प्रतिशत भी समाज और राष्ट्र के लिये लगाने के लिये तैयार नहीं हैं। उनसे क्या आशा कर सकते हैं।

समाज की उन्नति क्या है? पर्याप्त सड़कें, स्कूल, कॉलेज, हॉस्पिटल, गाडियाँ, नालियाँ विकसित होना। हम समाज, राष्ट्र व दूसरों से पाना चाहते हैं, लेकिन देने के लिए कुछ भी नहीं। इसका परिणाम यह निकला कि आज राष्ट्रीय, मानसिक और सामाजिक दृष्टिकोण से हम कंगाल हो गये हैं, छिन्न–भिन्न हो गये हैं। हमारे अन्दर राष्ट्रीय, सामाजिक हित की भावना नहीं है। हम इसको **राक्षस वृत्ति** कहते हैं, दैत्य वृत्ति कहते हैं। दूसरों से छीनना, प्राप्त करना, मगर देना कुछ नहीं, **दैव वृत्ति** नहीं है। हमारी वैदिक संस्कृति में दैत्य वृत्ति नहीं है। दूसरों को हम दें। राष्ट्र उन्नत इसलिए नहीं हो रहा है, यह दरिद्रता, भुखमरी, अज्ञान और पाखंड इसलिए है कि हमारे पास सामर्थ्य है, फिर भी हम अपना ही निर्माण नहीं कर पाते हैं, समाज राष्ट्र की बात तो दूर रही। हममें जो बल है, शक्ति है, सामर्थ्य है, ज्ञान है, धन है, संपत्ति है, अधिकार है, यह विनाश करने के लिए नहीं है।

आज नगरों के अंदर अधिकांश धनिकों के बच्चे नष्ट–भ्रष्ट हो रहे हैं, अत्याचार कर रहे हैं, अनेक प्रकार के गलत कार्य कर रहे हैं। वेद मंत्र में कहा है–धन को कमाओ, शीघ्र कमाओ लेकिन सोना–चांदी नहीं, विद्या का धन कमाओ, वैराग्य का धन कमाओ। फिर कहा है–उस धन को प्राप्त करके लोगों की सहायता करो। अपने जात–पात तथा पड़ोसी को ही नही, समाज और राष्ट्र को नहीं बल्कि विश्व भर में सहयोग करो।

भूमिका– भारतवर्ष संसार की सभ्यता, संस्कृति और ज्ञान विज्ञान की प्राप्ति का आधार रहा है, उसकी आज क्या दशा हो गई। आचार्यवर

संकेत कर रहे हैं कि:–

(51) सांस्कृतिक रूप से कंगाल हो गये हैं हम।

वेदों में बताये गये आदर्श जीवन से अपने जीवन की तुलना करके देखें कि आप कहां खड़े हैं। वेदों को पढ़ें, दर्शनों को पढ़ें, उपनिषदों को पढ़ें, गीता–रामायण, महाभारत को पढ़ें। भगवान राम और कृष्ण के जीवन को देखें। महापुरूषों के चरित्र को, उनके जीवन को देखें। उनके व्यवहार को, दिनचर्या को, खान–पान को, वेशभूषा को, आचार–विचार को, परंपराओं को व जीवन के आदर्शों को देखें। उनसे अपने जीवन से तुलना करें कि इसमें से हमारे अंदर क्या रहा है तो पता चलेगा कुछ नहीं है हमारे में, कंगाल हो गये हैं हम। खोखले हो गये हैं हम। हमारे अंदर आध्यात्मिक मूल्य, आध्यात्मिक संपत्ति तो रही ही नहीं। यह यथार्थ बात है कि आज देश के अंदर कहने को भले ही 80,90, प्रतिशत व्यक्ति अपने आप को आस्तिक कहते होंगे लेकिन **अधिकांश व्यक्ति ईश्वर के सच्चे स्वरूप को नहीं जानते हैं।** इतना ईश्वर के विषय में अज्ञान हो गया है। कपोल कल्पित ईश्वरों को लेकर पूजा कर रहे हैं, पाठ कर अपना समय खराब रहे हैं। उनसे कोई लाभ होने वाला नहीं हैं। लोगों को सही धर्म का ज्ञान–विज्ञान नहीं है। पूजा–पद्धति के विषय में ज्ञान–विज्ञान नहीं है। हमारा खान–पान निरंतर धीरे–धीरे बिल्कुल खराब बन गया है। आलस्य – प्रमाद के कारण और पश्चिमी सभ्यता–संस्कृति के अनुसरण के कारण, हम जो भोजन कर रहे हैं, वह तामसिक–राजसिक है। इससे हमारी बुद्धि पवित्र नहीं हो सकती है। हमारी भाषा हमारी नहीं रही, हमारी वेषभूषा हमारी नहीं रही, हमारी शिक्षा हमारी नहीं रही, कहां–कहां देखें हम। हमारे पास में जीवन का लक्ष्य नहीं है कि किस मार्ग पर चलें, हमारे सिद्धांत नहीं हैं। जीवन में तो व्रत ही नहीं है। आदर्श व्रत नहीं है कि मैं ऐसा करूंगा, ऐसा नहीं करूंगा। यह हानिकारक स्थिति है। हमारे पास हानि–लाभ की कोई परिभाषा नहीं है। जो मन में आया, वह कर रहे हैं। ऐसे जीवन को, ऐसे सिद्धांतों को, ऐसी शैली को लेकर चलने वाला व्यक्ति क्या जीवन में

सुख–शांति प्राप्त कर सकता है। राष्ट्र और समाज की स्थिति देखकर आपको भी कुछ कष्ट होता होगा, दु:ख होता होगा लेकिन केवल देख लेने से, विचार लेने से समस्याओं का समाधान नहीं होता है। सभी कहते हैं कि रोग बहुत बुरा है, लेकिन कहने मात्र से कि रोग बहुत बुरा है, कोई ठीक नहीं हो जाता। उसके लिए चिकित्सा करनी पड़ती है, निदान करना पड़ता है, दवाई लेनी पड़ती है, परहेज रखना पड़ता है, तपस्या करनी पड़ती है, संयम रखना पड़ता है, तब जाकर के रोग दूर होता है। राष्ट्र के अंदर सैंकड़ों प्रकार के रोग लग गये हैं। क्या आध्यात्मिक, क्या शैक्षणिक अनेक प्रकार के रोग से सब कुछ विकृत हो गया है। बहुत लोग पूछते हैं कि संसार का कैसे उद्धार होगा। हम अपना जीवन तो बनायें। कहने का अधिकारी वह है, जो यह कहे कि मैं सच्चे ईश्वर को जानता हूँ, मानता हूँ, और उसकी आज्ञा का पालन करता हूँ। मेरी दिनचर्या ठीक है, मेरा खान–पान ठीक है, मेरा आचार–विचार ठीक है, मैं यम–नियम आदि का पालन करता हूँ, यज्ञ करता हूँ, स्वाध्याय करता हूँ, सत्संग करता हूँ। मैं रिश्वत लेता–देता नहीं हूँ। मैं छल–कपट नहीं करता। मैं धोखा–धड़ी नहीं करता। ऐसे व्यक्ति जो अपने व्यक्तिगत जीवन को आदर्श बनाकर के फिर प्रश्न करें तो अच्छा ही है। स्वंय के जीवन में बड़े दोष हैं, उस व्यक्ति को ऐसा कहने को अधिकार नहीं बनता। उस व्यक्ति को अधिकार बनता है जो जिन आदर्शों को समाज में लागू करना चाहता हो, उनको अपने जीवन में लागू किये हो अथवा ऐसा प्रयास कर रहा हो। जो व्यक्ति आदर्श की बात कहने वाला है, वह भी झूठ बोल रहा है, छल–कपट कर रहा है, अन्याय कर रहा है, पक्षपात कर रहा है, आलसी है, प्रमादी है, निंदा करता है। ऐसा व्यक्ति कहे कि समाज में बुराईयां बहुत हैं, बड़ी खराबी आ गई है, बहुत झूठे हो गये हैं, बहुत आलसी हो गये हैं, बड़े प्रमादी हो गये हैं, बहुत पाश्चात्य सभ्यता वाले हो गये हैं, और स्वयं पाश्चात्य सभ्यता में रंगा हुआ है तो उसे आदर्श की बात कहने का अधिकार नहीं है। घर में 6–8 घंटे टी.वी. चल रहा है और बाहर जाकर बोलेगा– अरे टी.वी. तो बहुत खराब चीज है, बच्चे खराब हो गये हैं, बिगड़

रहे हैं और स्वयं खूब टी.वी. देख रहा है। ऐसा व्यक्ति अपना जीवन सुधार नहीं कर सकता। हम तुलना करके देखें महानुभाव, हम अपने जीवन की तुलना करेंगे तो अपने जीवन का निर्माण कर लेंगे। हमारे अकेले जीवन के निर्माण से परिवार के सदस्यों पर प्रभाव पड़ेगा। एक परिवार का निर्माण हो गया तो यह निश्चित है कि उसका प्रभाव गाँव के अंदर 20–25–50 परिवारों में पड़ता है। एक गाँव आदर्श होता है तो अनेक गाँवों पर उसका प्रभाव पड़ता है।

भूमिका– जो कुछ परम्परागत यानी प्राचीन है, हमने उसे फेंक दिया है और उससे उल्टा ग्रहण कर लिया है। आचार्यवर संकेत करते हैं कि:–

(52) आज सब कुछ उल्टा–पुलटा है।

आज हम जो जीवन जी रहे हैं, यह कोई आदर्श जीवन नहीं है। लगभग हमारा शीर्षासन हो गया है। व्यक्ति जब स्वाध्याय करता है, वेदों को पढ़ता है, दर्शनों को पढ़ता है, उपनिषदों को पढ़ता है, इतिहास के ग्रंथों को पढ़ता है, सिद्धांतों को, विधि–विधानों को देखता है तो उसको प्रतीति होती है कि आज हमारा जीवन लगभग उल्टा है। वह हमारी दिनचर्या नहीं है, वह व्यवहार नहीं है, वह भोजन नहीं है, वह लेखन नहीं है, वह चिंतन नहीं है, वह वस्त्र नहीं है, वह लोगों के प्रति, बड़ों के प्रति आदर नहीं है, वह भाषा नहीं है, वह लेखन नहीं है, संस्कार नहीं है, भ्रमण नहीं है, वह व्यायाम नहीं है, वह स्वाध्याय नहीं है, वह सत्संग नहीं है, ईश्वर की प्राप्ति का लक्ष्य नहीं है, वैराग्य की प्राप्ति का लक्ष्य नहीं है। अधिकांश लोग भेड़चाल से चल रहे हैं। तू करे सो मैं करूं, यह स्थिति है। जो समाज में, जो गाँव में, जो नगर में हो रहा है, जैसे वह कपड़े पहनता है, वैसे ही कपड़े दूसरा पहनता है, जैसी भाषा वह बोलता है, दूसरा वैसी भाषा बोलता है। **हमारा जीवन वैदिक दृष्टिकोण से लगभग विपरीत हो गया है।** महाभारत के काल के बाद विनाश होते–होते आज की स्थिति बनी।

भूमिका–आर्य संस्कृति में कई गंभीर सत्य मौजूद हैं, जहां तक यूरोपीय

संस्कृति भी नहीं पहुँची है। आर्य संस्कृति स्वार्थ सिद्धि की अपेक्षा सेवा, परमार्थ और यथार्थ ज्ञान पर ही जोर देती है। इसलिए कहा जाता है कि–भारत ही संसार का सिरमौर है। आचार्यवर का कथन है कि–

(53) हमारा सब कुछ श्रेष्ठ है।

हमारी भाषा सर्वश्रेष्ठ है। हमारा वेद सर्वश्रेष्ठ है। हमारा धर्म, हमारा ईश्वर श्रेष्ठ है। हमारा खान–पान श्रेष्ठ है। हमारा आचार–विचार श्रेष्ठ है। हमारा इतिहास, हमारी परंपरायें, हमारे जीवन का उद्देश्य हमारा सब कुछ श्रेष्ठ है। विदेशी लोग तो विवशता से कारण उल्टा–सीधा खा रहे हैं। फास्ट–फूड को खाकर के भयंकर रोग पैदा हो रहे हैं। उनको पैकिंग मटेरियल खाना पड़ता है। माइनस 20 डिग्री तापमान हो जाता है। मजबूर होकर के उनको टोप लगाना पड़ता है, जूते पहनने पड़ते हैं, गर्म कपड़े पहनने पड़ते हैं। उनको जूते पहनकर के खाना खाना पड़ता है। गर्म कमरे में रहना पड़ता है। हम लोग भारत में उनकी नकल कर रहे हैं। इंग्लैंड में कोई व्यक्ति रात में तारे देखकर खुले आसमान के नीचे सो नहीं सकता है। हम सोते हैं रात्रि में। विदेशियों की क्या खराब स्थिति है, पराधीन हैं बेचारे, विवश हैं वे। क्या भाषा, क्या कला, क्या संस्कृति, क्या जीवन का लक्ष्य, क्या ईश्वर, क्या समाधि हम हर प्रकार से श्रेष्ठ हैं। आज विदेशी व्यक्ति हमारे धर्म, हमारे क्षेत्र, हमारे इतिहास, हमारे आचार–विचार, हमारे खान–पान, और हमारे रहन–सहन से बहुत प्रभावित हो रहे हैं। मूर्खता यह है कि हम अपनी सभ्यता को भूलते चले जा रहे हैं। हमें इस विषय में जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। हम स्वयं नहीं अपनायेंगे तो दूसरों से क्या कहेंगे। आज विदेशों के अंदर आपने नाम सुना होगा इस्कान का, हरे कृष्णा हरे रामा। अमेरिका के अंदर लाखों साड़ियों का और धोतियों का आर्डर आया। अमेरिका के अंदर लोगों ने साड़ियाँ पहनना शुरू कर दी है। मंदिरों में हजारों की संख्या में उनका कीर्तन निकलता है। इस प्रकार पीली साड़ियाँ पहने और बाल मुड़ाये हुये सड़कों में हरे कृष्णा हरे रामा गाते हुए लोग निकलते हैं। ऐसा पवित्र कीर्तन होता है। वहां हमने भोजन किया है। यहां भी इतना बढ़िया

शुद्ध भोजन नहीं मिलता। दूध–घी, मक्खन, मलाई वाला सात्त्विक और शाकाहारी भोजन होता है। हम अपनी भाषा को, आचार–विचार को, अपनी संस्कृति को, अपनी वेशभूषा को भूलते जा रहे हैं। हमारे मन में भावना होनी चाहिए कि हम श्रेष्ठ हैं। इतना ही नहीं अपने आप को श्रेष्ठ बनाना है और संसार को भी श्रेष्ठ बनाना है।

(54) सब श्रेष्ठ बनें।

हमारे जीवन का लक्ष्य सम्पूर्ण विश्व को महान बनाना है। ये वेद का लक्ष्य है, ये ईश्वर का लक्ष्य है, ये स्वामी दयानंद का लक्ष्य है, ये आर्य समाज का लक्ष्य है। सम्पूर्ण विश्व को आर्य एवं महान् बनाना। हम तो इसी लक्ष्य को लेकर चल रहे हैं, इस कार्य को कर रहे हैं और करते रहेंगे। सारे विश्व के अंदर आर्यों को चक्रवर्ती सम्राट बनाना है। इंग्लैंड की रानी महारानी एलिजाबेथ जो बकिंघम पैलेस में रह रही है, उसके अंदर ओम का झण्डा लहरा सकता है। लोगों को लगता है यह असंभव है। यह संभव है कि एक दिन ऐसा आयेगा कि सारे विश्व के अंदर ओम का झण्डा लहरायेगा। यदि हम मन में संकल्प करें तो होगा कुछ नहीं सिर्फ त्याग करें, हम एक प्रतिशत त्याग करें। आज स्थिति यह है की हम सौ रूपये कमाते हैं मगर 1 रुपये देने को तैयार नहीं है। 18 घंटे हमारे पास में हैं, लेकिन 18 मिनट समाज को देने को तैयार नहीं हैं। पास में बहुत बड़ी बुद्धि है, साधन है, सामर्थ्य है, लेकिन एक अंश देने को तैयार नहीं हैं, ऐसी स्थिति में नहीं बनेगा। यदि हम तन–मन–धन और अवसर का त्याग करें तो बनेगा। आज नहीं, कल नही, हजार वर्ष के बाद नहीं लेकिन बनना है जरूर। निश्चित रूप से जैसे आज से 5000 वर्ष पहले आर्यो का अखंडित साम्राज्य था, ठीक ऐसे ही 5000 या 10000 वर्ष लगेंगे लेकिन एक दिन पुनः इस धरती के ऊपर आर्यो का चक्रवर्ती साम्राज्य हो सकता है। संकल्प लेकर हम चलते चलें।

भूमिका– आचार्यवर के मत में अंग्रेजी के प्रति लगाव मानसिक दासता का सूचक है इसलिए यह खत्म होना चाहिए:–

(55) अंग्रेजी भाषा की गुलामी छोड़ो।

सृष्टि के आने से लेकर के कुछ हजार वर्ष पहले तक 1800, 1500 वर्ष पहले तक सारे भारतवर्ष की भाषा संस्कृत थी। **संस्कृत जैसी वैज्ञानिक विश्व की कोई भाषा नहीं है। यह अत्यंत कम शब्दों में स्पष्ट रूप से अपने भावों को व्यक्त करने वाली भाषा है।** इसको विदेशी लोग अपना रहें हैं। जापान के अंदर करीब 50 स्कूलों के अंदर संस्कृत भाषा पढ़ाई जा रही है, मंत्रों का पाठ हो रहा है। इंग्लैंड में बहुत सी स्कूलें है जिनमें संस्कृत भाषा पढ़ाई जाती है। इसके विपरीत हमारे यहां अंग्रेजी आ रही है और संस्कृत निकाली जा रही है। हम गुलाम बने हुये हैं अभी तक। मैं आपसे प्रश्न करता हूँ– आपमें कितने ऐसे महानुभाव है जो हिन्दी भाषा में हस्ताक्षर करते हैं। आप में वैदिक भावना है आर्य लोग हैं। मुझे पता चला देश के 70 प्रतिशत लोग अंग्रेजी में हस्ताक्षर करते हैं। यह गुलामी का प्रतीक है। मैं तीन बार इंग्लैंड गया। मैंने 15–20 नगरों के अंदर हजारों दुकानें देखी होंगी। कहीं पर भी मेरे को हिन्दी का कोई बोर्ड दिखाई नहीं दिया। यहां पर आप देखिये, जितने उत्पादन हैं, साइन बोर्ड है,अधिकांश अंग्रेजी भाषा में हो रहे हैं। हमारा स्वप्न है– वेद के अनुसार देश की भाषा संस्कृत, हिन्दी। आपको आश्चर्य लगेगा कि विश्व के अंदर सबसे अधिक बोलने वाली भाषा चीनी है, अंग्रेजी नहीं है। करीब 70 करोड़ लोग हिन्दी जानते हैं। अंग्रेजी 10–12 देशों की भाषा होगी, अन्तर्राष्ट्रीय भाषा नहीं। हम लोगों ने इसको अपना रखा है। **हम अंग्रेजी को प्रश्रय दे रहे हैं जबकि विश्व के अंदर अधिकांश देश अपनी भाषा के प्रति कट्टर हैं।** फ्रांस की बात सुनाता हूँ मैं। हमारी फ्रांसिसी भाषा श्रेष्ठ है, वे ऐसा मानते हैं, और अपनी भाषा पर गर्व करते हैं। उन्होंने सारे देशों को स्पष्ट कह दिया है कि आपका एक भी पत्र हमारे देश में आयेगा नहीं और आयेगा तो बंटेगा नहीं और बंटेगा तो गलत बंटेगा। आपको फ्रांसिसी भाषा के अन्दर पता लिखना होगा। जर्मन वाले अंग्रेजी नहीं बोलते हैं, फ्रांस वाले अंग्रेजी नहीं बोलते हैं, उनकी अपनी भाषा है। जापान वाले अंग्रेजी नहीं बोलते। लोग कहते

हैं कि बिना अंग्रेजी के ज्ञान–विज्ञान सीख नहीं पाते हैं। क्या अपनी भाषा में जापान वाले नहीं सीख रहे हैं, रशियन नहीं सीख रहे हैं। जितने भी यूरोपियन देश हैं, अपने–अपने देश की भाषा में अनुवाद करके विज्ञान की बातों को पढ़ाते हैं। हम क्यों नहीं पढ़ा सकते हैं। दरअसल हमने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि बिना अंग्रेजी के हमारा काम नहीं चलेगा। ये बातें गुलामी का प्रतीक हैं। जापान से अरब में एक लाख, दो लाख या पांच लाख के इलेक्ट्रानिक्स के पार्ट्स (यंत्र) आते हैं। वह पहले चेतावनी देता है कि हम एक लाख, दो लाख, पांच लाख रूपये का सामान आपसे लेंगे मगर आपको सारे दिशा–निर्देश (गाइडेन्स) अरबी भाषा में लिखने पड़ेगें तो हम लेंगे। उसको तो माल बेचना है, इसलिए वह लिखेगा। छोटे से देश का छोटा सा आर्डर है, फिर भी उसकी भाषा में लिखता है और हमारे देश के अंदर उससे कई गुना माल जापान से, मलेशिया से, हांगकांग से आता है। लेकिन हम कोई फरियाद नहीं करते बल्कि समझौता कर लेते हैं कि ठीक है, अंग्रेजी चलेगी। भाषा के मामले में कट्टरता होनी चाहिए। स्कूल में, कॉलेज में, गाड़ियों में, हवाई जहाज में, हमें विवश होकर कठोर बोलना पड़ता है कि क्या ब्रिटेन से आये हैं आप। क्या आप हिन्दी नहीं बोल सकते। विदेश में मैंने प्रयास किया कि यदि 80 प्रतिशत से अधिक व्यक्ति हिन्दी समझते थे तो मैंने हिन्दी बोलने का प्रयास किया, अंग्रेजी को छेड़ा नहीं बीच में। मैं 15 प्रतिशत व्यक्तियों के लिए अंग्रेजी बोलूं और अपने भावों को ठीक प्रकार अभिव्यक्त न करूं तो मैं ऐसा नहीं करूंगा। मैं इन 15 प्रतिशत को अलग से पढ़ा दूंगा। जहां गुजराती समझने वाले थे, वहां मैंने गुजराती में भाषण दिया। अंग्रेजी का बहुत कम प्रयोग किया। मैंने कहा–मैं आपको, ईश्वर के विषय में, धर्म के विषय में, वेद के विषय में, यज्ञ के विषय में, ध्यान के विषय में बताने आया हूँ। आपको हिन्दी भी सीखनी चाहिए। **हिन्दी आप छोड़ेंगे तो आप ऋषियों की भाषा से वंचित हो जायेंगे।** हिन्दी भी सीखें, यह एक धर्म का कार्य है। मैंने कहा कि आप हिन्दी की रोजाना पिक्चर देखते हैं और क्या प्रवचन सुनने के लिए आपको अंग्रेजी चाहिए। फिल्में देख लेंगे आप हिन्दी में

और धार्मिक चर्चा आपको अंग्रेजी में चाहिए। यह तो अन्याय हो गया। हाँ, जो बच्चे या नवयुवक, हिन्दी नहीं पढ़ते थे उनको समझाने के लिए मैं 10–15 मिनट बैठकर उनको अंग्रेजी में बताता था। आम व्यक्ति जो हिन्दी जानता था, उसको मैंने नहीं बोला। हमारी भावनायें मर गई हैं। हमारी अस्मिता है, हमारी भाषा है, हमारे वेद भी कुछ हैं, यह कभी नहीं भूलना चाहिए।

भूमिका–हिन्दी देश के सबसे बड़े भूभाग में बोली जाने वाली भाषा है। देश में एकता व अखण्डता स्थापित करने हेतु इसका प्रचार जरूरी है। हिन्दी का प्रचार राष्ट्रीयता का प्रचार है। इसलिए आचार्यवर कहते हैं:–

(56) हिन्दी अपनाएँ।

ऐसे कितने व्यक्ति हैं जिनके बैंकों के अंदर अंग्रेजी में हस्ताक्षर होते हैं। महानुभाव बुरा न माने क्या हिन्दी में आप चेक निकालेंगे तो आपको पैसा नहीं मिलेगा। मैं आपको एक घटना बताता हूँ। मैंने बैंक से पैसा निकालने वाला फार्म हिन्दी में भर दिया तो बैंक के एक क्लर्क ने फार्म लौटा दिया। मैंने मैनेजर को फोन कर कहा कि मैं आपकी शिकायत करूंगा, मैं मुकदमा करूंगा। हिन्दी हमारी राष्ट्रीय भाषा है। आपने राष्ट्र की भाषा का अपमान किया है। क्या मैं हिन्दी के अंदर फार्म भरूंगा तो उसको स्वीकार नहीं करेंगे। वह तत्काल बैंक का कार्य छोड़कर के मेरे पास आया। मेरे से माफी मांगी कि मेरे कर्मचारी से भूल हो गयी है। महानुभाव आप तेलगू में लिखिये, कन्नड़ में लिखिये, मलयालम में लिखिये, उड़िया में लिखिये, अंग्रेजी भाषा में लिखना जरूरी नहीं है। आपको एक अंग्रेज नहीं मिलेगा जो हिन्दी में हस्ताक्षर करता हो, लैटिन में करता हो, फ्रेंच में करता हो और किसी भाषा में करता हो। **अंग्रेजी में हस्ताक्षर करना गुलामी का प्रतीक है।**

महानुभाव मैं पैंट को पहनना बुरा नहीं मानता। आप कार्य करते हैं, कार्य के लिए जाते हैं, सुविधाजनक है फैक्ट्री में, ऑफिस में लेकिन आपको धोती पहनना भी आना चाहिए, कटी वस्त्र भी पहनना आना चाहिए। हमारे भगवान राम ने और कृष्ण ने, हमारे महापुरूषों ने सभी ने धोती वस्त्र धारण

किये हैं। आप ध्यान दीजिये जब से अंग्रेज आयें हैं तब से यहाँ पैन्ट पहनने का रिवाज हुआ है। ठीक है पैंट पहनें, कोई विरोध नहीं है हमारा। सुविधा की दृष्टिकोण से यात्रा करते हैं, बसों में जाते हैं, फैक्ट्रियों में काम करते हैं लेकिन घर के अंदर कुर्ता है, लुंगी है, पैजामा है, इन्हें पहनें। इस प्रकार की हमारी वेषभूषा होनी चाहिये।

इसी प्रकार खान–पान के विषय में मुझे आज जानकारी मिली है कि **ये जो फास्ट फूड हैं, इनके माध्यम से रोग हो रहे हैं।** जहां विदेशी लोग रहते हैं, वहां काफी ठंड पड़ती है, बेचारे प्रतिकूल वातावरण में रह रहे हैं। इसलिए वे फूड को पैकिट में बना–बना कर रखते हैं। हम तो ऐसे वातावरण में रह रहे हैं, जहां रोजाना ताजा भोजन बनाकर के खा सकते हैं। भाषा के विषय में, वेशभूषा के विषय में और देखिये।

आज आपको 100 फिल्मों में से1 फिल्म ऐसी नहीं मिलेगी जिसके अंदर अश्लील दृश्य न हों, जिसमें मार–काट, हिंसा, द्वेष की बातें न हों। आप यह बुरा मानते हैं । समस्या यह है कि हम केवल मानते हैं लेकिन करते नहीं। यह हमारा शाब्दिक ज्ञान है। मैं देश के अंदर बहुत से परिवारों को जानता हूँ जिन्होंने टी.वी. को उठा के फेंक दिया। पढ़े–लिखे हैं, योग्य हैं, उनके बच्चे हैं। वे घर के अंदर टी.वी. चलने नहीं देते। ठीक है कि टी.वी. जिसके घर में नहीं होगा उसको पर्याप्त सामान्य ज्ञान शायद न हो। आज के बच्चे को देश के चप्पे–चप्पे की जानकारी है, अमेरिका में क्या है, जर्मनी में क्या है, कितनी नदियां हैं, कितने जंगल हैं। **इस ज्ञान की कोई इतनी विशेष कीमत नहीं है।** अमेरिका में कौन से पेड़ हैं, कौन सी नदियां है। आज डिस्कवरी चैनल आता है, हम इसका विरोध नहीं कर रहे हैं। लेकिन 100 में से 2–4 बच्चे मिलेंगे जो डिस्कवरी देखते हों या केवल न्यूज देखते हों लेकिन आज गंदे–गंदे प्रोग्राम भी टी.वी. में परोसे जा रहे हैं। वेबसाइट के माध्यम से, इंटरनेट के माध्यम से इतनी गंदी सामग्री उपलब्ध है, जिसकी हम कल्पना नहीं कर सकते हैं। 15 वर्ष का बच्चा हाथ में स्क्रीन लिये हुये मोबाइल के अंदर गंदी फिल्में देखता है

और वह चीज आ रही है और हम स्वीकार करते जा रहे हैं। वह आपने एक कथा सुनी होगी–कबूतरों के शिक्षा दी कि शिकारी आयेगा, जाल बिछायेगा,दाना डालेगा और फँसना नहीं। हम भी बस बोलते जा रहे हैं, बोलते जा रहे हैं पर काम वही कर रहे हैं। हम सब यह बुरा मान रहे हैं लेकिन कर वही रहे हैं। हम व्यक्तिगत जीवन की उन्नति करें, साधना करें, स्वाध्याय करें, सत्संग करें, व्यायाम करें, यम–नियम का पालन करें, आदर्श दिनचर्या बनायें, सात्त्विक भोजन करें, अच्छे–अच्छे वस्त्र पहनें आदि–आदि।

भूमिका–युद्ध से जब सामूहिक हत्या होती है तो परिवार टूटते हैं, संस्कृति व धर्म मिटता है और राष्ट्र का विनाश होता है। पहला युद्ध तैयारी है दूसरे युद्ध की, दुबारा मानव जाति के विनाश की। आचार्यवर के शब्दों में:–

(57) युद्ध विनाशक है।

हम भारतवर्ष में जन्मे हैं, यह हमारा सौभाग्य है। हम वेदों को मानने वाले हैं। दर्शनों को, ऋषियों को मानने वाले हैं। राम और कृष्ण हमारे आदर्श पुरूष हैं। हमारा बहुत लंबा चौड़ा इतिहास है। हर प्रकार से हम आदर्श रहें हैं। **सृष्टि के प्रारंभ से लेकर के और महाभारत के काल तक इस धरती पर आर्यों का अखंडित चक्रवर्ती साम्राज्य था।** तब एक राजा होता था, दो नहीं। आज स्थिति यह है कि पृथ्वी के 200 राजा हो गये हैं। देशों और प्रान्तों के रूप में भूमि के टुकड़े–टुकड़े हो गये हैं और अन्धेर नगरी बन गई है। युद्ध के कारण ऋषि–मुनि, गुरूकुल, आध्यात्मिक संस्थान, पुस्तकालय, वैज्ञानिक आदि सब कुछ नष्ट हो गया। युद्ध का परिणाम क्या होता है, यह देखना हो तो जापान को देख सकते हैं, इजराइल को देख सकते हैं, कुवैत को देख सकते हैं, अफगानिस्तान को देख सकते हैं, ईराक को देख सकते हैं। अफगानिस्तान का कोई ऐसा इलाका नहीं मिलेगा जहां मनुष्य रहते हों और वहां पर बम न गिरा हो। युद्ध ने कुछ ही दिनों के अंदर सब तहस–नहस कर दिया, ऐसे ही महाभारत के काल के अंदर हुआ। हमारी संस्कृति,

सभ्यता, आचार–विचार, परंपरायें, विद्वान, योगी, वैज्ञानिक, शिल्पी, खगोल शास्त्री और पंडित युद्ध के कारण नष्ट हो गये। वर्ण व्यवस्था नष्ट हो गई। विकार होते–होते आज यह पतन की पराकाष्टा को पहुंच गया। न वेद है, न वैदिक शिक्षा है,न वैसी भाषा है,न संस्कृति है,न वेशभूषा है,न खान–पान है,न जीवन का लक्ष्य है,न जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के आदर्श मार्ग हैं,न शैली है,न साधन हैं।

भूमिका–इतिहास मनुष्यों की बुद्धिमानी और मूर्खता का, श्रेष्ठ और नीच कर्मों का रजिस्टर है। इसके अध्ययन से मनुष्य बुद्धिमान बनता है। जब हम इतिहास के अनुभवों से सबक नहीं लेते तो इतिहास की पुनरावृत्ति होती है और विनाश निश्चित होता है। इसलिए आचार्यवर कहते हैं:–

(58) इतिहास से सबक सीखो।

आज से लगभग 1100 वर्ष पहले जब हम अत्यंत आलसी, प्रमादी और विषयभोगी बन गये और विघटन पैदा हो गया, फिर भी हमारे पास में धन, संपत्ति, ऐश्वर्य कुछ–कुछ था। वे देश जिनको आज हम इरान, ईराक, अफगानिस्तान, दुबई आदि–आदि कहते हैं। जिनके ऊपर आज पेट्रोलियम का अधिकार है। ये भूखे देश थे। न इनके पास खाने को, न पीने को और न रहने को था। मरने के बाद लकड़ी जलाने के लिए नहीं थी इसलिए गाड़ने की परंपरा शुरू हुई। हमारे देश के वैभव को, संपत्ति को, ऐश्वर्य को, सोने को, चांदी को देखकर के उनके मुँह में लार आती थी। यहां का माल विदेशों में जाता था तो इनकी आँखे चकरा जाती थी। यहां के वस्त्र, आभूषण, कला, यहां के शिल्प, यहां का संगीत, यहां का मनोरंजन हर प्रकार से श्रेष्ठ था। वे भूखे–नंगे भेड़ियों की तरह यहाँ आये। कितना दूर है अफगानिस्तान, और आगे चलिये इरान कितनी दूर है। वहां से घोड़ों पर चढ़कर के, ऊटों पर चढ़कर के लूटने के लिए लोग भारत आये। **इतिहास को जो व्यक्ति नहीं जानता है, तब भावना नहीं उत्पन्न होती। वह सबक भी नहीं सीखता।** लगभग 1100 वर्ष पहले मोहम्मद बिन कासिम इस देश में आया। कुछ

हजार घोड़े थे उसके पास में। भारत के अंदर बड़े–बड़े राजा–महाराजा बड़ी–बड़ी मूछों वाले, जिनकी बड़ी–बड़ी छाती थी। कितने मजबूत, बलवान, राजपूत थे लेकिन ये कुछ मुगलों के सामने आकर के गाजर मूली की तरह काट दिये गये, क्योंकि उनके अंदर एकता नहीं थी। जब बाबर आया, उसके पास लगभग 30 हजार सैनिक थे और यहां पर घोड़े पर आया था और यहां राणा सांगा के सामने कितने लाख पैदल, हाथी पर, घोड़ों पर, ऊटों पर थे, तोपें भी बहुत थी लेकिन वह संगठित नहीं था। योजनाबद्ध तरीके एक ही इशारे पर चलाने वाला, एक नेतृत्व करने वाला व्यक्ति और यहां 50 सेनाओं का गठबंधन, ऐसी स्थिति भी। इतने बलवान थे मगर ऐसी मार खाई राणा सांगा ने, मेल न होने के कारण नष्ट भ्रष्ट हो गये। इस देश के अंदर 700, 800 वर्ष तक उन्होंने तबाही मचाई। जो इतिहास है, उनको देखिये। इतिहास पर रोक (बैन) लगा दिया गया था। हम पर अत्याचार किया, हमारा विनाश किया गया है। किसने किया है, कैसे किया है। कितना हमारा गौरव था। हमारे शिल्प, कला और हमारी संस्कृति का कितना विनाश किया। इस इतिहास को नष्ट किया जा रहा है। उसके बाद में अंग्रेज आये। उन्होंने लगभग 200 वर्ष तक राज किया। मुगलों ने खून–खराबा किया, मार काट किया और अंग्रेजों ने हमारी बुद्धि को नष्ट–भ्रष्ट किया।

आज जो बुद्धि नष्ट हुई, वह परंपरा से नष्ट हो रही है, अधिक हो रही है। स्थिती यह बन गई है कि अंग्रेजों के समय में अंग्रेजी इतनी नहीं थी, जितनी आज हो गई है। जितनी विलासिता उस समय नहीं थी, आज हो गयी है। यह विनाश हुआ। आजादी देने के बाद में यह काले अंग्रेजों ने उनसे ज्यादा विनाश किया। विगत 150 वर्षों के अंदर अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी वेशभूषा, अंग्रेजी खान–पान, अंग्रेजी दिनचर्या, अंग्रेजी विचार, अंग्रेजी कला, अंग्रेजी जीवन का लक्ष्य, इनका प्रचार–प्रसार हुआ। हम अंग्रेज बन कर बैठ गये। केवल 50 वर्ष के अंदर सारे अंग्रेज देश में छा गये। कुछ व्यक्ति हुये हैं, जिन्होंने चेतावनी दी। स्वामी दयानंद बहुत दूरदर्शी थे। अंग्रेजों के काल में

जब कोई कहने वाला व्यक्ति नहीं था उस समय उन्होने कहा कि विदेशी व्यक्ति कितना परोपकारी क्यों न हो, सेवाभावी क्यों न हो, न्यायकारी क्यों न हो, कितने गुणों से युक्त क्यों न हो, लेकिन जो विदेशी व्यक्ति है उसका राज्य सर्वोपरि नहीं है। विदेशी, विदेशी ही है। अपनी अनुकूलता से अपने राज्य को चलाने के लिए अंग्रेजों ने शिक्षा संस्थानें खोलीं, रेलें बिछाई, कारखाने खोले, अनेक प्रकार के उद्योग चलाये। जब स्वामी दयानंद जी के क्रांतिकारी विचारों को किसी अंग्रेज अधिकारी ने सुना तो उन्होंने कहा स्वामीजी आपको हम आपके देश के अंदर प्रचार करने की छूट दे रहे हैं। हम सुनते हैं कि हमारा भी आप खंडन कर रहे हैं। हम आप से इतना निवेदन कर रहे हैं कि एक प्रार्थना हमारी भी कर लिया करना कि अंग्रेजों का राज्य अखण्डित बना रहे। उन्होंने कहा–नहीं, ऐसा नहीं करूंगा, मैं तो रोजाना यही प्रार्थना करता हूँ कि यहां से जल्दी से जल्दी अंग्रेज चले जायें। ऐसी राष्ट्रीय भावना, सामाजिक भावना आज हमारे में शून्य है।

भूमिका– लोक में गाय के समान कोई दूसरा धन नहीं है, इसलिए आचार्यवर कहते हैं:–

(59) गोधन बढ़ायें।

देश में गायें मर रही हैं। हमारे पास यहां पर रोजड़ से लेकर के 10–10, 20–20 किलोमीटर से लोग आ रहे हैं। वे कहते हैं कि हमको गाय का घी चाहिए क्योंकि औषधि बनानी है, हवन करना है। देश के अंदर गाय का घी नहीं मिल रहा है। लोगों को घी चाहिए, दूध चाहिए, मक्खन चाहिए, पनीर चाहिए, मावा चाहिए, मलाई चाहिए मगर गाय नहीं चाहिए, यह स्थिति है। गाय नहीं पाल सकते हैं तो कोई बात नहीं परंतु जहां गौशाला है, गायें पल रहीं हैं, वहां तो कुछ सहयोग कर सकते हैं। ऐसी भावना भी नहीं है तो यह हमारी स्वार्थ की पराकाष्टा है। सुरक्षित सब होना चाहते हैं, सुखी सब होना चाहते हैं, लेकिन समाज, राष्ट्र के लिए कुछ देने को तैयार नहीं हैं।

भूमिका–प्रेरणा ईश्वरीय देन है, जो सात्त्विक प्रकृति के लोगों को श्रेष्ठ

कार्य करने के लिए प्रेरित करती है और नीच कर्मों को करने से रोकती है। आचार्यवर कहते हैं कि–

(60) ईश्वर हमें प्रेरणा देता है।

ईश्वर नामक वस्तु हमारे हृदय में बैठी हुई है। वह हर समय यह इंगित करती है कि ये अच्छा है, ये बुरा है, ये न्याय है, अन्याय है, ये पाप है, ये पुण्य है, ये सत्य हैं, ये असत्य है, ये लाभकारी है, ये हानिकारक है, ये धर्म है, यह अधर्म है। इस बात का ज्ञान हमको अंदर बैठा हुआ ईश्वर करा देता है। ये हमारा अपना सामर्थ्य है, यह योग्यता है हमारी। जिनका मानसिक स्तर कुछ अच्छा बना हुआ है, जो कुछ–कुछ आध्यात्मिक ज्ञान–विज्ञान के ऊपर चलने का प्रयास करते हैं, कुछ–कुछ जिनकी आत्मा पवित्र है, उनको यह ज्ञान अधिक होता है। यदि हम थोड़ा सा भी ध्यान दें तो हमको तत्काल प्रतीति हो जायेगी कि अभी मैं जो काम कर रहा हूँ, वह अच्छा है कि बुरा है, अभी मैं जो बोल रहा हूँ, वह उचित है या अनुचित है। इस बात की प्रतीति हम ईश्वर के माध्यम से कर सकते हैं। ***भूमिका– ईश्वर कृपालु है। उससे अच्छे गुण, कर्म और स्वभाव प्राप्त होते हैं–***

(61) ईश्वर से विशेष गुण मिलते हैं।

वेद मंत्रों के माध्यम से हमें बहुत प्रेरणा मिलती है। हम कई व्यक्तियों को संसार के अंदर विद्वान देखते हैं, बलवान देखते हैं, गुणवान देखते हैं, धनवान देखते हैं, तपस्वी देखते हैं, त्यागी देखते हैं। उन्हें अनेक प्रकार के गुणों से युक्त देखते हैं। वे सारे के सारे गुण परमपिता परमेश्वर के माध्यम से आते हैं। जीवात्मा में विशेष सामर्थ्य नहीं है, आनंद तो है ही नहीं। ये गुण ईश्वर के माध्यम से भी प्राप्त कर सकतें हैं।

भूमिका–जिज्ञासा ज्ञान का साधन है। ईश्वर विषयक जिज्ञासा ईश्वर के ज्ञान का कारण है, इसलिए आचार्यवर कहते हैं कि:–

(62) ईश्वर के विषय में मन में प्रश्न उत्पन्न करें।

दूसरा विषय है– ईश्वर। सूक्ष्म विषय है ईश्वर का। आने से पहले अनेक बार मन में इस प्रकार की भावना बन जाया करती थी कि पता नहीं हम जिस ईश्वर को मान रहें हैं, जिसके बारे में वेदों में लिखा है, वो है भी या नहीं है। शाब्दिक रूप में ज्ञान होता है। शाब्दिक न हो तो व्यक्ति की आनुमानिक स्थिति परिपक्व नहीं होती है। आनुमानिक ज्ञान न हो तो जिसका निश्चयात्मक ज्ञान होता है, तो वह प्रायः अपूर्ण रहता ही है।

ईश्वर है, निश्चित रूप से है, सर्वव्यापक है, न्यायकारी है, और माता–पिता के समान मेरे को देख, सुन और जान रहा है। जैसे अन्य व्यक्तियों को सामने देखते हैं, वैसे ही संसार में ईश्वर की उपस्थिति व्यक्ति को देखना चाहिये। इससे परिपक्व ज्ञान होता है। अपने से ये भी प्रश्न करना चाहिए कि क्या मैं ईश्वर को सदा, सर्वदा अपने समक्ष उपस्थित मानता हूँ अथवा नहीं मानता हूँ।

भूमिका–निष्पक्ष ईश्वरीय न्याय की चक्की समय से चलती है। जैसे फूल और फल समय आने पर वृक्षों में लग जाते हैं, वैसे पहले के किए कर्म भी अपने फल भोग के समय का उल्लंघन नहीं कर सकते, क्योंकि फलों को देने वाला ईश्वर है। अतः आचार्यवर कहते हैं किः–

(63) ईश्वरीय न्याय व्यवस्था को स्वीकारो।

ऐसे ही यम–यम के विषय में प्रश्न उठायें। क्या वास्तव में सर्वदा सत्य ही बोलना चाहिए या कभी झूठ भी बोलना चाहिये। इसी प्रकार पुर्नजन्म के विषय में, क्या वास्तव में हमें मरने के बाद में कोई जन्म मिलता है अथवा नहीं। इसी प्रकार कर्म फल के विषय में, क्या बुरे कर्मो का फल अवश्य दुःख ही मिलता है और अच्छे कर्मो का फल सर्वदा सुख ही मिलता है। ये ऐसे विषय हैं, जिन विषयों को उठाने पर व्यक्ति के मन में एक आंदोलन सा होता है। क्यों? क्योंकि हमारा व्यवहार इस बात को प्रमाणित करता है कि पुर्नजन्म में, कर्म फल में, ईश्वर की न्याय व्यवस्था में, हमारा विश्वास कम है। हमारा व्यवहार जो झूठ से युक्त है, छलकपट से युक्त है, अन्याय और पक्षपातों से

युक्त है, स्वार्थ से युक्त है, यह ये बता रहा है कि हम ईश्वर, ईश्वर की न्याय व्यवस्था और पुर्नजन्म पर कम विश्वास करते हैं। यदि शत्–प्रतिशत् व्यक्ति का कर्मफल पर विश्वास हो तो व्यक्ति झूठ बोले ही नहीं, क्यों? झूठ बोलने का परिणाम होता है– दुःख, पीड़ा, बंधन, भ्रम। कोई भी व्यक्ति बंधन, पीड़ा, भय, शोक चाहता नहीं है। अब हम इस प्रकार का कार्य कर रहें हैं तो इसका मतलब है कि इस विषय पर हमारा अविश्वास है। हमारा ज्ञान थोड़ा है। इसलिए जहाँ अनुकूलता होती है, जहाँ कोई बाधा नहीं आती है, कष्ट नहीं होता है, वहाँ हम अहिंसा और सत्य का प्रयोग करते हैं, संयम, अनुशासन, नियमों और विधि विधानों का प्रयोग भी करते हैं। लेकिन जहाँ पीड़ा होती है,कष्ट, अपमान,भय होता है, वियोग, दुःख भी होता है अथवा अन्य किसी प्रकार से मन में हीनता की भावना और कठिनाईयाँ भी आती हैं तो हम सत्य को छोड़कर असत्य की ओर झुक जाते हैं। तब हम न्याय को छोड़कर, अन्याय की ओर झुक जाते हैं, परार्थ को छोड़कर, स्वार्थ की ओर झुक जाते हैं। ये बातें हमारे इस सिद्धांत के प्रति अपरिपक्वता को दर्शाती हैं। इससे पता चलता है कि न्याय व्यवस्था में व्यक्ति का पूरा विश्वास नहीं है। यदि पूरा विश्वास होता तो व्यक्ति इस प्रकार का काम नहीं करता।

इसी प्रकार वेदों के विषय में है। क्या वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं, क्या ऋषियों ने जो वेदों के आधार पर स्मृतियों में,अन्य–अन्य ग्रंथों में हमको व्यवहार संबंधी बातें बताई हैं, दिशा निर्देश दिया है, विधि–विधान किया है, क्या वास्तव में वो सत्य है? अगर सत्य है तो उसका हमको पूरा पालन करना चाहिये। जैसे कि ऋषि ने लिखा हैः– मुमुक्षु को प्रतिदिन कम से कम एक–एक घंटा ईश्वर का ध्यान करना चाहिये। अगर नहीं करते हैं, तो इसका मतलब यह है कि स्वामी दयानंद को हम आदर्श व्यक्ति नहीं मानते हैं क्योंकि उन्होंने जो बातें वेद के आधार पर हमारे सामने उपस्थित की हैं, वो बातें प्रामाणिक न मानने के कारण ही हम उन पर आचरण नही करते। इसलिये आध्यात्मिक व्यक्ति को अपने आप से प्रश्न करना चाहिए।

।। समाप्त ।।